RNI No. 7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2017-19

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 55 अंक : 06 कुल पृष्ठ : 36 4 जून, 2018

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान
फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़
आजाद सिंह राठौड़
सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड
हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 जून, 2018

वर्ष : 55 अंक-06

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
❍ भगवत् सान्निध्य का अभ्यास	✍ स्वामी श्री यतीश्वरानन्द	07
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	10
❍ कला, साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में....	✍ डॉ. श्री हुकमसिंह भाटी	12
❍ श्रीकृष्ण की संहार लीला	✍ श्री गिरधारीसिंह डोभाड़ा	15
❍ विचार-सरिता (द्वात्रिंशत् लहरी)	✍ श्री विचारक	19
❍ भिनाय की रानी/बोराज की बेटी	✍ स्व. श्री सवाईसिंह धमोरा	21
❍ संत-शिरोमणि सतीमाता रूपकंवरजी.....	✍ श्री भंवरसिंह मांडासी	24
❍ हरिद्वार के प्रमुख दर्शनीय स्थल	✍ स्वामी श्री गोपालआनन्द बाबा	26
❍ भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में राजपूतों...	✍ श्री भंवरसिंह मांडासी	28
❍ भक्त शिरोमणि मीरा बाई	✍ श्री ब्रजराज सिंह खरेड़ा	30
❍ अपनी बात	✍	32

समाचार संक्षेप

शिविर :

11 मई, 2018 को प्रात: चार बजे ब्रह्म मुहूर्त में शंख ध्वनि के साथ भारतीय ग्राम आलोकयान द्वारा विकसित किए जा रहे आदर्श शिविर स्थल 'आलोक आश्रम' बाड़मेर में 561 स्वयंसेवकों के साथ श्री क्षत्रिय युवक संघ के ग्रीष्मकालीन उच्च प्रशिक्षण शिविर का शुभारम्भ हुआ। सभी प्रान्त प्रमुखों को निर्देश थे कि सभी शिविरार्थी शिविर प्रारम्भ की पूर्व संध्या को ही पहुँच जाएँ। सभी यथासमय पहुँच भी गये और इसीलिए शिविर का शुभारम्भ प्रथम दिन ही प्रात: चार बजे से हो गया।

इस शिविर में बहुसंख्यक शिविरार्थी राजस्थान और गुजरात के विभिन्न जिलों से पहुँचे। साथ ही उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, हरियाणा की भी उपस्थिति रही। प्रवासी राजस्थानी स्वयंसेवक मुंबई, पूना, सूरत आदि स्थानों से भी पहुँचे तो एक दुबई में कार्यरत स्वयंसेवक ने भी उपस्थिति दर्ज करवाई।

शिविर के स्वागत कार्यक्रम को सम्बोधित करते हुए माननीय संघप्रुखश्री ने कहा कि इस शिविर में हमें हमारे अंतर में स्थित देवत्व एवं असुरत्व में संघर्ष का सूत्रपात करना है। हमारे चेतन तत्व को जाग्रत कर हमारे द्वारा स्वीकार की गई जड़ता का समूल नाश करना है। यह संघर्ष हमारे लिये चुनौती है और चुनौती को स्वीकार करना क्षत्रिय का स्वभाव है। शिविर के दौरान विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा स्वागत संदेश में दिए गये इस सूत्र को आत्मसात करने का अभ्यास करवाया गया। प्रतिदिन प्रात:कालीन प्रार्थना में माननीय संघप्रमुखश्री द्वारा प्रभात संदेश में चिन्तनीय सूत्र दिए जाते जिनके आधार पर पूरे दिन के कार्यक्रमों के माध्यम से अन्तरावलोकन (स्व निरीक्षण) एवं तदनुकूल उद्यम का अभ्यास करवाया जाता।

प्रात:कालीन खेलों में जहाँ सुप्त संघर्षशीलता को जाग्रत करने का अभ्यास करवाया गया तो साथ ही ईमानदारी, अनुशासन, सत्यनिष्ठा, भ्रातृत्व, दृढता आदि का अभ्यास भी चलता रहा। खेलों के बाद के कालांश में संघ के द्वितीय संघप्रमुख श्रद्धेय आयुवानसिंहजी हुडील रचित 'मेरी साधना' पुस्तक के अवतरणों पर चर्चा के माध्यम से सांघिक साधना के प्रारम्भ से अग्रेतर विकास में आने वाले सोपानों एवं उनसे सम्बन्धित समस्याओं पर चर्चा की गई।

अगले कालांश में पूज्य तनसिंहजी द्वारा रचित साधना-रूपक सहगायनों पर चर्चा कर उनके अर्थ एवं भाव का बोध करने का प्रयास किया गया। अपराह्न प्रवचन में संघ के दर्शन को स्पष्ट करने वाले विषयों, यथा-हमारा उद्देश्य, मार्ग, लोकसंग्रह, अनुशासन, संस्कृति, अधिकारी साधक, ध्वज, ऐतिहासिक अन्तरावलोकन, नेतृत्व आदि को विस्तार से समझाया गया। चर्चा के माध्यम से खेलों से उभरने वाले गुणों को स्पष्ट कर अभ्यास को उपयोगी बनाया गया।

शिविर में एक दिन गीता के श्लोकों का शुद्ध उच्चारण के साथ गायन किए जाने का अभ्यास श्री अरविन्द स्वामी द्वारा करवाया गया। कानून सम्मत नागरिक अधिकारों, यथा आर.टी.आई., द्वारा कैसे क्षत्रियत्व-रूप सहयोग आम जन का हमारे द्वारा किया जा सकता है, यह भी समाज के अग्रणी आर.टी.आई. कार्यकर्ता ने शिविर में समझाया। युवा अपने रोजगार के लिये प्रतियोगी परीक्षाओं में भाग लेना चाहते हैं, पर इसकी तैयारी कैसे की जाए, यह भी समझाया गया।

प्रवचन के दौरान एक समूह में पूज्य तनसिंहजी रचित पुस्तक 'साधक की समस्याएँ' पर भी चर्चा की गई। सांघिक साधना के दौरान साधक के जीवन में आने वाली समस्याओं की जानकारी और उनके निदान हेतु पू. तनसिंहजी निर्देशित सावधानी पर चर्चा हुई। शिविर की व्यवस्था का जिम्मा बाड़मेर के स्वयंसेवकों ने संभाला। 55 घटों और 22 पथकों में प्रशिक्षण दिया गया। प्रवचन व चर्चा तीन समूहों में अलग-अलग स्थानों पर होती। 21 मई को शिविर सम्पन्न हुआ। 22 मई से नया शिविर प्रारम्भ हो गया। मई माह में ही एक बालिका शिविर तथा तीन बालकों के शिविर सम्पन्न हुए, जिनमें से एक मध्यप्रदेश में हुआ।

शिविर में प्रथम दिन संध्या में एक स्वयंसेवक का सादगीपूर्ण विवाह सम्पन्न हुआ। बालिका भी संघ की स्वयंसेविका है। इनकी सगाई भी दो वर्ष पूर्व एक शिविर में मात्र तिलक निकाल कर की गई थी।

चलता रहे मेरा संघ

(संघशक्ति प्रागंण जयपुर में आयोजित विशेष शिविर में दिनांक 3.9.2007 को प्रात:कालीन सत्र में संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी रोलसाहबसर के उद्‌बोधन का संक्षेप)

अभी हमने गीत गाया - ***हिन्दू के कुल के उजियारे बन क्षत्रिय आगे आवें। हम ऐसा संघ बनावें।*** ऐसा संघ बनाने के लिये निरन्तर शाखाएँ लगती हैं, अनेक शिविर लगते हैं, यह शिविर भी उसी की कड़ी है। जो ऐसे विशेष शिविर में आते हैं वे अपने अन्य समकक्ष स्वयंसेवकों को प्रेरित करें। शिविर के संदेश को उन तक पहुँचाएँ। अब थोड़े बदलाव की आवश्यकता है। जो वृद्ध स्वयंसेवक हैं वे अब संरक्षक का कार्य करें और 35 से 40 वर्ष की आयु के आस-पास वाले स्वयंसेवक प्रांतप्रमुख का दायित्व निभावें। संघप्रमुख का अनुभव उसके कार्यों में अति आवश्यक है, अत: छोटी आयु में संघप्रमुख बने तो लम्बे समय तक कार्य कर सकेगा और लम्बा अनुभव होना बहुत ज्यादा काम का है। वह व्यक्ति लम्बा अनुभव प्राप्त करे तब तक संरक्षक वर्ग दिशा दर्शन हेतु उपलब्ध रहें।

स्वयंसेवक तो वह है जो सक्रिय है। आलस्य और प्रमाद में उलझा व्यक्ति तो स्वयंसेवक भी नहीं है। जिम्मेवार स्वयंसेवक तो सक्रियता के साथ-साथ और अधिक दायित्व वहन करने वाला ही हो सकता है। किसी को जिम्मेवार कह देने से वह जिम्मेवार नहीं बनता। जो स्वयं दायित्व को समझता है और उसी के अनुरूप कार्य कर रहा है, तभी वह जिम्मेवार बन सकता है। सहयोगी वर्ग प्रतिवर्ष बदला जाए, ऐसी तैयारी सदैव रहनी चाहिए ताकि अधिक लोग अनुभवी बनते रहें।

किसी भी संगठन के विस्तार के साथ लचरपन बढने की पूरी संभावनाएँ रहती हैं। इसीलिए हमें पूरी सावधानी बरतनी चाहिए। सावधानी यही है कि प्रत्येक स्वयंसेवक जिम्मेवार बने। वे तैयार रहें कि उनको कोई भी दायित्व दिया जाए तो उसे भली प्रकार निभा सकें। तैयारी दायित्व लेने की इच्छा से नहीं करनी है बल्कि इसलिए करनी है कि संघ की आवश्यकता है, योग्य स्वयंसेवकों की, जिम्मेवार स्वयंसेवकों की।

साधक के जीवन में भटकाव को रोकना आवश्यक है। अन्यथा साधक इन्द्रियों के वश में बहक जाए, ऐसी पूरी संभावना है। ऐसी बातें संगठन में फैलती हैं तो संगठन को सीधा नुकसान होता है। हमारा संगठन बढ रहा है और बढते हुए संगठन में सावधानी न बरती जाए तो स्वयंसेवक के भटकाव की संभावना भी बढती है। अत: प्रत्येक को चिंतन करते रहना चाहिए ताकि भटकाव की हवा का असर न हो। अपने आपको बदलना अति आवश्यक है। हमारी सक्रियता बनी रहे पर साथ ही हमारा आचरण स्वच्छन्दता न अपनाए। हमारे आचरण पर हमें बार-बार विचार करना चाहिए। यदि कुछ भूल हुई है तो झूठ का सहारा लेकर बचाव करने की बजाय उसे स्वीकार करना साधक व संगठन, दोनों के लिये लाभकारी है।

साधक स्वयं की ओर देखे, चिन्ता करे। किसी दूसरे को बदल देने का प्रयास करना साधक के लिये कार्य नहीं है, अपना स्वयं का जीवन बदलना, संगठन के अनुरूप जीवन को ढालना, सही उपाय है। इस पथ पर चलकर हमारा संघ बने। हमारा काम नए स्वयंसेवकों को लाकर उन्हें संघ की महत्ता समझाना है। पर यदि हमारा स्वयं का जीवन संघ के अनुरूप नहीं है तो हमारे उपदेश कोई नहीं मानने वाला। दायित्व दिया जाए तो ही काम करें, यह भी उचित नहीं। संघ को अपना कार्य मानकर कार्य तो करते ही रहें। आलस्य, प्रमाद, समय की कमी, धंधे आदि का बहाना साधक जीवन में नहीं चलता। ऐसी अड़चनें यदि आती हैं तो हम स्वयंसेवक कैसे हुए? हमारा उद्देश्य व हमारी साधना तो देश, काल, परिस्थिति निरपेक्ष है। संसार में रहते हैं, सांसारिक समस्याएँ आती हैं पर संघ का काम करते रहना है। अगले वर्ष प्रांतप्रमुख बदलने हैं। योग्य व्यक्ति प्रान्त प्रमुख के लिये उस क्षेत्र में नहीं मिलेगा तो प्रान्त भी तोड़ा जा सकता है। अत: आप सभी को योग्य बनना है। आप योग्य बन

सकते हैं, बनना है, बनेंगे। संघ की चाह पूरी करनी है तो पहले सही स्वयंसेवक बनो, उत्तरदायी बनो, तभी सहयोगी बन पाओगे। पिता की क्षमताएँ विकसित करेंगे तो उत्तरदायित्व भली प्रकार निभा पाएँगे।

अपने आपको जगाने की आवश्यकता है। और अधिक गुरुत्तर कार्य करने के लिये जगने और तैयार होने की आवश्यकता है। साथ ही जो काम आप कर रहे हैं, वह कार्य करने को अन्य को तैयार करो। ऐसा न कर सको तो अतिरिक्त कार्यभार वहन करने के लिये तैयार रहो। कैसी भी परिस्थिति हो, कार्य तो करना ही है। इसलिए परिस्थिति से निपटने के लिये हमारी पूरी तैयारी होनी ही चाहिए। आग लगने पर तो अंधा, लूला, लंगड़ा सभी सक्रिय हो जाते हैं उस आगे से बचने के लिये। हमारे समाज में भी भटकाव की, कर्तव्यहीनता की आग फैल रही है। ऐसे में हमें सक्रिय होना ही है, चाहे जाग्रति के सम्बन्ध में हम लूले-लंगड़े ही हों। सक्रिय होकर पहले अपनी अकर्मण्यता को त्यागें, तभी हम अन्यों से भी कुछ कह सकते हैं।

आज पूरे संसार की स्थिति है कि कर्तव्य पालन से सब बचने का प्रयास करते हैं। संसार की ऐसी स्थिति से उत्पन्न परिणामस्वरूप आहें भी भरते हैं, शिकायतें भी करते हैं, पर स्वयं बचना चाहते हैं। यदि क्रांति घटित हो जाए तो फिर यह स्थिति नहीं रहती। हमारी भी यदि अकर्मण्यता है तो क्रांति की आवश्यकता है। साहित्य सृजन कई उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है। हल्के दर्जे के मनोरंजन से लेकर, गहरे उतर कर जीवन में क्रांति घटित करने के लिये साहित्य सृजन होता है। क्रांति से यहाँ हमारा तात्पर्य है-आमूलचूल परिवर्तन।

श्री क्षत्रिय युवक संघ में जो साहित्य है वह व्यक्ति के जीवन में बदलाव लाने के उद्देश्य से लिखा गया है। पूज्य तनसिंहजी ने व्यक्ति के जीवन में सकारात्मक बदलाव लाकर सामाजिक क्रांति व मानवीय क्रांति लाने के लिये साहित्य रचा है। व्यक्ति के जीवन में सकारात्मक बदलाव लाना बहुत मुश्किल काम है, इसलिए बहुत समय लगेगा। देश और समाज में बदलाव के लिये क्रांतियाँ होती रही हैं पर उनमें तात्विक रूप से व्यक्ति नहीं बदलता। पर यह व्यक्ति परिवर्तन वाली जो बात है, वह अमूल्य बीज है। बाह्य क्रांति को आंतरिक क्रांति बनाना बहुत मूल्यवान बात है। ऐसा बोया बीज व्यर्थ नहीं जाता।

श्री क्षत्रिय युवक संघ की बातें बाहर की हैं ही नहीं। ये अन्दर देखने वाली बातें हैं। ऐसा अन्दर देखने वाला व्यक्ति एक दिन अवश्य साथ आएगा। भीतर की बात हर एक के समझ में नहीं आ सकती। पू. तनसिंहजी की लिखी गई सामग्री अंत:करण की गहराइयों से लिखी गई है। हम अन्त:करण तक पहुँचते हैं क्या? शायद नहीं। यदि हम अंत:करण तक पहुँचकर पूज्यश्री की बात को समझेंगे तो एक हूक उठेगी। हमने जो पाया है, उसे बांटने के लिये जुट जाएंगे। पूज्यश्री ने जो गाया है- ***जंगल-जंगल मगन फिरूं,*** वैसी विकलता आ जाएगी, तभी क्रांति की घटना घटेगी।

साहित्य को केवल पढने की नहीं, बार-बार परायण करने की आवश्यकता है। उसे पढकर उसके अनुसार जीवन में बदलाव लाना होगा। पू. तनसिंहजी हमारे जीवन में क्रांति करना चाहते हैं पर यह ठीक से समझ लें कि जो बचकर निकलने वाले हैं उनसे क्रांति नहीं घट सकती। संघ का साहित्य बड़ा क्लिष्ट है, पर पूज्य श्री की चाह भी बहुत ऊँची है अत: उसके अनुरूप ही साहित्य होगा। अन्तर की ओर मुड़े बिना बाहरी बदलाव प्रभावशाली नहीं बनता। आन्तरिक क्रांति तक कुछ चन्द लोग ही यात्रा कर पाते हैं और पूज्य तनसिंहजी वैसे लोग हममें ढूंढ रहे हैं। काम बहुत उच्च स्तर का है पर उसके परिणाम बहुत सुन्दर होंगे। कुछ चन्द लोग ही आन्तरिक क्रांति कर लें तो उनके प्रभाव से बड़ी घटना घट सकती है।

संघ साहित्य पर टीका वही कर सकता है जिसने अन्तर दर्शन कर लिया है। महापुरुषों का साहित्य पढें तो पू. तनसिंहजी के साहित्य की कुंजी मिल सकती है। छोटे-छोटे सूत्र साहित्य में से लिए जाएं तो उन सूत्रों के पालन करने से भी कुंजी मिल सकती है। पर बचकर निकलने का प्रयास न किया जाए। करना तो है ही।

(शेष पृष्ठ 34 पर)

भगवत् सान्निध्य का अभ्यास

– स्वामी यतीश्वरानन्द

मन को उच्च स्तर पर बनाए रखना :

आध्यात्मिक जीवन के लिये सुबह और सायंकाल एक-दो घण्टे ध्यान में बिताना पर्याप्त नहीं है। कुछ मात्रा में ध्यान का मनोभाव सारे दिन बनाये रखना चाहिए। जीवन के दैनन्दिन कर्तव्यों में लगे रहते हुए भी भगवच्चिन्तन का एक अन्तर्प्रवाह बना रहना चाहिए। यह अपवित्र विचारों को उठने से रोकता है और ध्यान में बैठने पर एकाग्रता के लिये बहुत सहायक होता है। दैनन्दिन ध्यान के साथ भगवत् सान्निध्य का अभ्यास किया जाना चाहिए और यदि ठीक से किया जाये तो वह अपने आप में एक तीव्र साधना है। वह एकाग्रता रहित कई घण्टों तक किये गये ध्यान के बराबर होता है।

भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय में अर्जुन श्रीकृष्ण से स्थितप्रज्ञ के लक्षण पूछते हैं। इस पुस्तक तथा अन्य आध्यात्मिक ग्रंथों में मुक्तपुरुषों के लक्षण बार-बार गिनाये जाने का क्या उद्देश्य है? गीता के द्वितीय अध्याय पर अपने भाष्य में शंकराचार्य इसकी व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं कि मुक्तपुरुष के लक्षणों को साधक द्वारा आचरित गुण अथवा साधनाएँ समझना चाहिए। संघर्षरत जीव के लिये जो कष्टसाध्य साधना है, वही सिद्ध पुरुष के आभूषण हैं, अलंकार हैं। एक सिद्ध महापुरुष के चरित्र और व्यवहार की जानकारी का यही महत्त्व है।

इन सभी निर्देशों में ध्यान देने योग्य मुख्य बात यह है कि मन को सदा उच्च स्तर पर बनाये रखना चाहिए। मन को कभी भी नीचे नहीं आने देना चाहिए। परम आदर्श को भूलकर सांसारिक मामलों में डूबने से ऐसा होता है। कर्म और कर्तव्य अपरिहार्य है, अत: उन्हें परमात्मा के साथ सम्पर्क बनाये रखने के उपायों में रूपान्तरित करना चाहिए। ऐसा किये बिना सायं-प्रात: किया थोड़ा सा ध्यान-जप अधिक लाभकर नहीं होता। हमें सदा भगवान् को याद रखना चाहिए और ऐसा करने का एकमात्र उपाय, हम जो कुछ करते या सोचते हैं, उसे परमात्मा से जोड़ना है। मन को खाली रहने देना अथवा भूतकाल का चिंतन करते रहना बहुत हानिकारक है। यदि मन को खाली रहने दोगे तो वह व्यर्थ चिंतन करता रहेगा और भूतकालीन स्मृतियों में डूबा रहेगा। ये किसी के लिये लाभदायक नहीं होते।

यदि कभी तुम्हारी ऐसी मन:स्थिति होवे तो तत्काल कोई अच्छी पुस्तक पढ़ने लगो अथवा किसी की निस्वार्थ सेवा करने लगो। तुम देखोगे कि वह मनोदशा शीघ्र दूर हो जाएगी। अन्यथा यदि तुम केवल बैठे-बैठे भूतकाल की स्मृतियों में खोये रहोगे, तो समय बर्बाद तो होगा ही, तुम स्वनिर्मित बाधाएँ भी पैदा करोगे। धर्म जीवन में गहन अध्ययन के महत्त्व पर जितना बल दिया जाये उतना कम है। अधिकांश साधकों के लिये यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यह मानना कि स्वाध्याय तुम्हारे लिये अब आवश्यक नहीं है, और तुम ध्यान से ही सब कुछ पा जाओगे, निरा अभिमान है। निश्चय ही ध्यान उच्चतर चक्रों को विकसित करने में सहायक होता है, लेकिन प्राण और मन की सारी ऊर्जा को इन केन्द्रों से प्रवाहित नहीं किया जा सकता। ऊर्जा की बड़ी मात्रा निम्नतर चक्रों में बची रहती है, और उसे यदि किसी सृजनात्मक कर्म के द्वारा प्रवाहित न किया जा सके, तो इससे मन अनावश्यक रूप से विक्षिप्त हो जाता है। स्वाध्याय और नि:स्वार्थ कर्म को एक प्रकार की साधना समझना चाहिए। उन्हें आध्यात्मिक जीवन की किसी भी सर्वतोमुखी योजना का अंग होना चाहिए। उन्हें अनावश्यक या व्यर्थ समझकर छोड़ नहीं देना चाहिए। अन्य समय कुछ रचनात्मक कार्य कर सकने पर तुम जीवन में नीरसता का अनुभव नहीं करोगे। अन्यथा विशेषकर प्रारम्भिक साधक के लिये स्वयं आध्यात्मिक जीवन ही असहनीय रूप से नीरस हो जाता है।

हमारे आध्यात्मिक जीवन का मूल्यांकन दिनभर में

हमारे मन में भगवदीय विचार किस प्रकार और कितनी बार उठते हैं, इससे किया जाना चाहिए। दिन में एक दो बार ध्यान के लिये घण्टे भर के लिये बैठना पर्याप्त नहीं है। हमारे दैनन्दिन कर्तव्य कर्मों के बीच भगवदीय विचारों को निरंतर उठते रहना चाहिए। यही वास्तविक आध्यात्मिक जीवन है। अन्यथा तुम एक दो घण्टे के लिये ही आध्यात्मिक रहते हो। अन्य समय तुम किसी सामान्य सांसारिक व्यक्ति से भिन्न नहीं।

लेकिन, निश्चय ही इसके लिये दीर्घकाल तक प्रयत्नपूर्वक संघर्ष करना पड़ता है। अप्रिय परिस्थितियों एवं व्यक्तियों से बचा नहीं जा सकता और ये हमारे मन को विक्षिप्त करते हैं। अत: उन्हें भी परमात्मा के साथ जोड़ना सीखना चाहिए। परमात्मा की सृष्टि की इस विशाल रचना में तथाकथित दुष्ट लोगों और दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों के लिये कोई स्थान निर्धारित करो, और तब तुम पाओगे कि अन्तत: लोग दुष्ट दिखायी नहीं देते और परिस्थितियाँ भी इतनी दुर्भाग्यपूर्ण नहीं लगती। निरंतर अभ्यास के द्वारा तुम अपने अहंकार को पीछे फेंकने में, परमात्मा को सामने लाने में और उन्हें अपने वैचारिक जीवन को प्रभावित करने देने में सफल होओगे। अपने क्षुद्र अहंकार से चिपके रहना ही आध्यात्मिक जीवन की प्रमुख समस्या है। इसे कम किया जाना चाहिए। अपने प्रति तुम्हारा दृष्टिकोण ही तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति की सम्भवत: सबसे बड़ी बाधा है न कि अन्य व्यक्ति और परिस्थितियाँ।

निरंतर अभ्यास :

अभ्यास के द्वारा हाथों से कर्म करते हुए भी तुम भगवन्नाम का जप अथवा किसी स्तोत्र या प्रार्थना का पाठ तथा भगवत्-स्मरण कर सकोगे। इस तरह तुम कर्म को उपासना में परिणत कर सकोगे तथा परमात्मा के निकट आ सकोगे।

निश्चित समय पर ध्यान और प्रार्थना करना आध्यात्मिक प्रगति के लिये अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। कर्म के समय भी प्रार्थना और ध्यान का मनोभाव बनाये रखना चाहिए। तभी समर्पण के भाव से किया जाने वाला कर्म आध्यात्मिक साधना में परिणत हो पाता है, तथा प्रार्थना और ध्यान की तरह ही प्रभावशाली हो पाता है। एक हिन्दू स्तोत्र में कहा गया है : ''मैं जो कुछ करता हूँ, प्रभु, सभी तुम्हारी आराधना है।''

अपने नियमित ध्यान और प्रार्थना के विषय में बहुत सतर्क रहो, लेकिन सारे दिन भी कुछ मात्रा में भगवच्चिन्तन को अपने साथ बनाये रखो। अपने खाली समय को भगवन्नाम और चिंतन द्वारा जिस मात्रा में तुम पूर्ण करने में समर्थ होगे, उतनी ही मात्रा में तुममें एक महान आध्यात्मिक रूपान्तरण होगा और तुम अपने हृदय में भगवत्-सत्ता, प्रेम और आनन्द का अधिकाधिक अनुभव करने लगोगे।

आध्यात्मिक पथ के पथिकों के जीवन में अनिवार्य रूप से आने वाले उतार-चढ़ावों से चिन्तित मत होओ। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि समुद्र के निकट पहुँचने पर ही नदी में ज्वार का प्रभाव दिखायी देता है। तुम्हें अपने मनोभावों की चिंता नहीं करना चाहिए। मन में उतार-चढ़ाव होते रहते हैं, लेकिन निष्ठापूर्वक जप और ध्यान करते रहने पर तथा उस एक अपरिवर्तनशील परमात्मा के सान्निध्य का अनुभव करने पर तुम्हें अधिकतर स्थिरता प्राप्त होगी। इसके अतिरिक्त तुम्हारी चिन्तन और आत्मनिरीक्षण की शक्ति में भी वृद्धि होगी।

थोड़े जप-ध्यान के बाद अपने कर्तव्यों को करो, लेकिन कुछ मात्रा में यह भाव बनाये रखो कि अनन्त परमात्मा तुम्हारी आत्मा की आत्मा के रूप में, तुम्हारे हृदय में, और उसी तरह सभी प्राणियों में विद्यमान है। यह भी सोचो कि तुम तथा अन्य सभी उसमें अवस्थित हैं।

इस तरह बढ़ते रहो। तब तुम तुम्हारी आत्मा और परमात्मा के मिलन केन्द्र हृदय-चक्र का अधिकाधिक अनुभव कर सकोगे। यह कालान्तर में तुम्हें महान् शारीरिक और मानसिक स्थिरता प्रदान करेगा।

परमात्मा के साथ आन्तरिक सम्पर्क :

प्रत्येक साधक को निरंतर अभ्यास के लिये चेतना

का एक निश्चित केन्द्र, एक इष्ट देवता और एक मंत्र होना चाहिए। इसके साथ ही नाविक की कुतुबनुमा की घड़ी जिस प्रकार सदा उत्तर दिशा की ओर इंगित करती रहती है, उसी प्रकार हमारे मन को सदा चेतना के केन्द्र में इष्ट के रूप तथा मंत्र में लगे रहना चाहिए। प्रत्येक साधक का एक उच्चतर आध्यात्मिक चेतना का केन्द्र होना चाहिए। उसे सदा अपने चेतना के केन्द्र में रहना सीख लेना चाहिए। अपने मन को प्रात:कालीन ध्यान के समय वहाँ एकाग्र करने में सफल होने पर वह यह आसानी से कर सकता है। अपने वास्तविक ''अहं'' की वहाँ पर स्थिति अनुभव करने में समर्थ होने पर उसके लिये अपनी व्यक्तिगत चेतना को इस केन्द्रीय चेतना के साथ संयुक्त करना आसान हो जाता है। साधक को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह चेतना के अपने केन्द्र में सदा बद्धमूल है। यदि हमारा मन इस केन्द्रीय चेतना से उखड़ जाए, तो वह अन्य स्थानों में जड़ें जमाने लगता है, जो बहुत अस्थिरता पैदा करता है। ज्ञान मार्ग का अनुसरण करने वाले सतत् आत्मविश्लेषण द्वारा सदा केन्द्रीय ''अहं'' चेतना को पकड़े रहने का प्रयत्न करते हैं। वे अधिक सन्तुलित रहते हैं, तथा दीर्घ आध्यात्मिक शुष्कता का अनुभव नहीं करते।

भक्त की बात भिन्न है। वह अपने इष्ट देवता के रूप को अधिक महत्त्व देता है और जब वह उन्हें स्मरण नहीं कर पाता, तो दु:खित होता है। भक्ति-मार्ग का अनुसरण करने वालों को अपनी व्यक्तिगत चेतना को इष्ट की चेतना के साथ संयुक्त करना सीखना चाहिए। जब इष्ट की जीवन्त-सत्ता की अनुभूति नहीं होती, तब तुम्हारी अपनी चेतना का भी आधार नहीं रहता और तुम्हें ऐसा लगता है, मानो तुम बिना किसी सहारे के हवा में तैर रहे हो। कभी-कभी साधक ध्यान के समय इष्ट के रूप को बहुत स्पष्ट रूप से देखने में सफल होता है, लेकिन वह पाता है कि वह उसके साथ ठीक से सम्पर्क स्थापित नहीं कर पा रहा है। वह अपनी चेतना को इष्ट की चेतना के साथ संयुक्त नहीं कर पा रहा है। इससे गहरा विक्षेप होता है तथा प्राय: दीर्घकालव्यापी अस्थिरता हो जाती है। कई दिनों तक साधक एक प्रकार की भावनात्मक रिक्तता में रहता है।

यदि कुछ समय के लिये तुम अपने इष्ट देवता के साथ सम्पर्क का अभाव अनुभव करो, तो कृपया निराश मत होओ। प्रार्थना करते रहो तथा अपना स्वाध्याय और साधना करते रहो। आन्तरिक तीव्रता के साथ प्रतीक्षा करो, आन्तरिक सम्पर्क पुन: स्थापित हो जायेगा और वह भी पहले से अधिक गहरा।

वस्तुत: हमारी आत्माएँ सदा परमात्मा के साथ संयुक्त रहती हैं, लेकिन अचेतन के राज्य में रहने के कारण हम उसका अनुभव नहीं कर पाते। अपवित्रताएँ, आन्तरिक वासनाएँ और कल्पनाएँ हमें चेतना के उच्चतर स्तर पर उठने नहीं देतीं, जहाँ हम परमात्मा का सम्पर्क आसानी से अनुभव कर सकें। अत: चित्तशुद्धि को आध्यात्मिक जीवन में इतना अधिक महत्त्व दिया गया है।

आधुनिक लोगों की मुख्य समस्या यह है कि वे अपने इष्ट के प्रति तीव्र प्रेम का अनुभव नहीं करते और उसके साथ ठीक सम्बन्ध स्थापित करने में सफल नहीं होते। परमात्मा के प्रति सच्चा प्रेम होने पर वह कर्म के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। सभी प्रकार के कर्म साधक की परमात्मा के प्रति श्रद्धा को अभिव्यक्त करने लगते हैं।

(क्रमश:)

जो एक प्रभु अपनी नियामक शक्ति के द्वारा सबको नियम में रखते हैं, जो एक अहेतु होते हुए भी सब लोकों की उत्पत्ति और लय करने में समर्थ हैं, उन देव को जो लोग पहचान लेते हैं, वे अमृत रूप हो जाते हैं।

- अमृत कलश

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

- चैनसिंह बैठवास

1952 के प्रथम आम चुनाव में राजस्थान में 160 विधानसभा सीटों में से 57 सीटों पर राजूपत प्रत्याशी विजयी रहे। राजपूत जाति को ये सीटें उनके पूर्वजों के द्वारा लोगों पर किये गये उपकार, आम जनता से बने मधुर सम्बन्धों व उनके सद्व्यवहार के आधार पर मिली थी या यह कहें कि यह विजय पूर्वजों के सद्कर्मों व उनके पुण्य कर्मों के फलस्वरूप मिली थी। आम लोगों में पूर्वजों की प्रतिष्ठा, मान-सम्मान व इज्जत थी, इसकी वजह से आम जनता का झुकाव राजपूतों की ओर रहा। आम जनता में पूर्वजों की जो साख बनी थी, इस साख ने इस विजय यात्रा में अहम (महत्ती) भूमिका निभाई।

पूर्वजों की बनी साख को आगे बरकरार नहीं रख पाये और पूर्वजों से विरासत में मिली इस जीत को भी राजस्थान के राजूपत आगे आने वाले चुनावों में नहीं भुना पाये। इसके कई कारण हो सकते हैं जिनमें एक मुख्य कारण तो यह रहा कि राजपूतों से रंजिस व द्वेष भाव रखने वाला बुद्धिजीवी वर्ग राजपूत जाति के विरुद्ध जहर उगलने लगा। इस बुद्धिजीवी वर्ग ने आमजन को राजपूतों के विरुद्ध बरगलाने, बहकाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। राजपूतों की छवि को धूमिल करने के लिये इस बुद्धिजीवी वर्ग ने राजपूत जाति के खिलाफ आम जन के दिमाग में जहर घोलना शुरू कर दिया। नई पीढ़ी यानी युवा वर्ग जिन्होंने राजा-महाराजाओं की राज व्यवस्था देखी ही नहीं, उनके दिमाग में इन बुद्धिजीवियों ने जैसा चाहा वैसा जहर भर कर उनमें ऐसी कड़वाहट पैदा कर दी कि यह नयी पीढ़ी यानी युवा वर्ग राजपूत जाति को अपना दुश्मन समझने लग गया। इसकी वजह से आजादी के पूर्व सभी जातियों में जो आपसी सहयोग, मेल-जोल व सौहार्द्रपूर्ण वातावरण था, वो बिगड़ गया और उसकी जगह साम्प्रदायिक विद्वेष पनप गया। सामान्य जन में राजपूतों के प्रति आक्रोश पैदा हुआ और वे राजपूतों से द्वेष रखने लग गये।

1952 के प्रथम आम चुनाव में जीतने वाले अधिकांश राजपूत उम्मीदवार राजा-महाराजा या बड़े जागीरदार वर्ग से सम्बन्धित थे जिनका जनता से सीधा जुड़ाव नहीं के बराबर था। जिनका जनता से सीधा जुड़ाव था, उन्होंने अपनी राजशाही के प्रभाव से राजनीति में अपना स्थान अवश्य बनाये रखा पर ऐसे संख्या में कम ही थे। कुछ लोग जो राज परिवार व जागीरदार वर्ग से तो सम्बन्धित नहीं थे, पर वे अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा व अपने बलबूते पर विधायक और सांसद बनते रहे हैं, उनमें एक सर्व-प्रमुख पूज्य श्री तनसिंहजी भी थे।

सन् 1957 के दूसरे आम चुनाव में पूज्य श्री तनसिंहजी बाड़मेर से फिर विधायक चुने गये। उन्होंने राजनीति का संघ कार्य में साधन के रूप में उपयोग किया। राजनीति उनके संघ कार्य में कभी बाधक नहीं बनी बल्कि संघ कार्य में उनकी सदा सहयोगी ही बनी रही।

सन् 1962 में पूज्य श्री तनसिंहजी रामराज्य परिषद के टिकट पर लोकसभा के लिये बाड़मेर-जैसलमेर क्षेत्र से विजयी हुए। बाड़मेर-जैसलमेर लोकसभा क्षेत्र भारत के सबसे बड़े लोकसभा क्षेत्र में तो आता ही है, यह विश्व के निर्वाचन क्षेत्रों में भी सबसे बड़ा और विशाल निर्वाचन क्षेत्र है। इतने बड़े लोकसभा क्षेत्र में साधन के रूप में पूज्य श्री के पास केवल एक जीप गाड़ी थी, साथ में सहयोगियों के रूप में स्वयंसेवक, कार्यकर्ता व कुछ अन्य साथी, जिनके सहारे इस विशाल मरुस्थलीय चुनाव क्षेत्र में घूम-फिर कर, प्रचार-प्रसार कर आमजन से सम्पर्क साध कर, अपार जन समूह का अगाध प्यार और समर्थन पाकर यह चुनाव जीतकर वे सबसे बड़े लोकसभा क्षेत्र से सांसद बने। इस चुनाव का खर्चा मात्र नौ हजार रुपये हुआ था।

पूज्य श्री तनसिंहजी सरल स्वभाव, निष्कपट राजनीतिज्ञ, सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले, साफ सुथरी छवि के व व्यवहार प्रिय थे इसलिये अपने क्षेत्र में लोकप्रिय व सबके पसंद के थे। यही कारण था कि बाड़मेर-जैसलमेर क्षेत्र के मुसलमान कांग्रेस को ही अपना हितैषी राजनैतिक दल समझकर सदैव कांग्रेस को ही मत व समर्थन दिया करते थे पर जब पूज्य श्री चुनाव में खड़े होते थे तो वे उन्हें ही अपना मत व समर्थन दिया करते थे। उनकी इस बढती लोकप्रियता व निखरती छवि कुछ ईर्ष्यालु लोगों को रास नहीं आई। इसी वजह से 1967 के चुनाव में उन्हें सफलता नहीं मिली। इस हार को माँ भगवती का प्रसाद मानकर स्वीकार किया।

सन् 1969 बोरून्दा उच्च प्रशिक्षण शिविर में पूज्य श्री तनसिंहजी ने संघ की बागडोर पूज्य श्री नारायणसिंहजी रेड़ा के हाथों में सौंप कर निश्चित हो, अपने स्वागत उद्‌बोधन में उन्हें भोलावण देते हुए यह भी कहा कि ''आध्यात्मिक क्षेत्र में मुझे जो करना था वह कर चुका, अब मुझे आर्थिक क्षेत्र में उगना (बढना) है।'' यह उनके लिये नयी खोज थी, नयी राह थी। अब पूज्य श्री ने व्यापार के क्षेत्र में हाथ बढाया, ''क्षत्रिय बन्धुत्व'' (के.बी.) नाम से एक संस्था का गठन किया और सिवाना में भगवती कृषि यंत्रालय के नाम से फर्म खोल व्यापार का धन्धा शुरू किया। आराध्य माँ भगवती की कृपा से उनका व्यापार फल-फूलने लगा और देखते-देखते ही जोधपुर, पाली, चित्तौड़, पीपाड़, जैतारण, बिलाड़ा, सिरोही, अनादरा, कपासन, बावड़ी, राणी व सोजत आदि जगह दुकानें खुल गयी और व्यापार शुरू हो गया। संघ में काम करने वाले अनेकों बेरोजगारों को इन दुकानों में रोजगार मिला। इन दुकानों में काम कर व्यापार की बारीकियों, व्यापार करने का तरीका, इनकी कार्यशैली जानी व सीखी और दरिद्रता व बेरोजगारी से छुटकारा पाया। पूज्य श्री ने रात-दिन कड़ी मेहनत कर इस व्यापार क्षेत्र में अपने कई अनुचरों को कुशल व्यापारी बना दिया। के.बी. में रहते अनेकों ने व्यापार करना सीख अपना स्वयं का व्यापार भी शुरू कर आर्थिक सम्पन्नता पायी। पूज्य श्री व्यापार के वार्षिक लाभांश से संघ कार्य में सहयोग भी करते और के.बी. कर्मचारियों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने में सहयोग भी करते रहते थे। व्यापार क्षेत्र में कार्यरत पूज्य श्री ने लाखों की कमाई की पर माया के चक्कर में कभी नहीं आये, माया में कभी नहीं उलझे।

सन् 1975 में प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी ने आपातकाल की घोषणा की। इस आपातकाल में आम जनता के साथ ज्यादती हुई जिसके कारण कांग्रेस के प्रति आक्रोश तेज हो गया। जनता के आक्रोश को अनदेखा कर 1977 में आम चुनाव कराये। जनता में तो पहले से ही आक्रोश था और विरोधी दलों ने मिलकर जनता पार्टी के नाम से एक नये राजनैतिक दल का गठन किया और इस चुनाव में कांग्रेस के प्रत्याशियों के सामने अपने प्रत्याशी खड़े किये। इस चुनाव में पूज्य श्री तनसिंहजी ने कोई रुचि नहीं ली तो उन्हें चुनाव लड़ने के लिये बाध्य किया गया। राजनेताओं के आग्रह व जनता के आह्वान ने उन्हें पुन: चुनाव लड़ने के लिये मजबूर किया। वे बाड़मेर-जैसलमेर लोकसभा क्षेत्र से जनता पार्टी के उम्मीदवार थे व सामने राज्य सरकार में रहे मंत्री श्री खेतसिंहजी कांग्रेस की ओर से उम्मीदवार थे। लोकसभा का सबसे बड़ा क्षेत्र व साधन सीमित ही थे पर जनता पार्टी की लहर व आपातकाल में हुई ज्यादती से पनपी आक्रोश की आँधी ने कांग्रेस के प्रत्याशी श्री खेतसिंहजी को धराशायी कर भारी बहुमत से पूज्य श्री को विजयी बनाया। यह चुनाव जीतकर पूज्यश्री दुबारा सांसद बने।

सन् 1979 में मध्यावधि चुनाव हुए। वे इस चुनाव में खड़ा नहीं होना चाहते थे पर केन्द्रीय राजनेताओं के विशेष आग्रह पर वे फिर लोकसभा चुनाव लड़ने के लिये तैयार हुए। चुनाव का फॉर्म भरने से पूर्व अपनी प्रेरणास्रोत ममतामयी माताश्री से आशीर्वाद लेने वे सिवाना गये। आशीर्वाद लेते समय 7 दिसम्बर, 1979 को पूज्य श्री अपनी परम पूज्या माताश्री की गोद में सदा-सदा के लिये अनन्त निन्द्रा में सो गये और कौम के गौरवमय इतिहास में अमर हो गये। ***(क्रमश:)***

कला, साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में महाराणा प्रताप का योगदान

- डॉ. हुकमसिंह भाटी

आजादी के लिये लगातार संघर्ष करने वाले प्रताप के समूचे जीवन पहलू अत्यन्त कठोर और कष्ट से भरे हुए दिखाई देते हैं परन्तु जिस धैर्य, साहस और अपनी सूझ-बूझ से उस तपोनिष्ठ महाराणा ने अकबर जैसे शक्तिशाली आततायी से लोहा लेते हुए राजनैतिक प्रशासनिक तथा सांस्कृतिक कार्य बड़े ही रचनात्मक ढंग से सम्पादित किये, वह मेवाड़ व राजस्थान ही नहीं अपितु भारत के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है।

महाराणा प्रताप का राजतिलक राज्य विहीन स्थिति में हुआ। एक जगह शान्ति से निवास करने का न कोई ठिकाना रहा और न ही जीवन यापन व सुरक्षा के लिये सुनिश्चित साधन। अत: प्रताप को चारों ओर से विपत्ति के काले बादलों ने घेर रखा था। ऐसी विकट घड़ी में प्रताप ने अपने पुरखों के इतिहास से सबक लिया। प्रताप यह भलीभाँति जानते थे कि उसके दादा महाराणा सांगा ने खानवा के रणक्षेत्र में बाबर से टक्कर ली और पिता महाराणा उदयसिंह ने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं करते हुए चित्तौड़गढ़ का परित्याग कर दिया था। उसी चित्तौड़ दुर्ग के रक्षार्थ अनेक वीरों ने अपना बलिदान दिया। महाराणा प्रताप अकबर की अधीनता स्वीकार कर अपने पूर्वजों की गौरवमय कीर्ति को कदापि कलंकित नहीं करना चाहते थे। इस स्वाभिमान की भावना से प्रताप का संपूर्ण जीवन युद्ध अभियानों से जुड़ गया। पहले हल्दीघाटी के युद्ध में अपनी सेना की व्यूह-रचना कर मुगलों की सेना को ऐसा छकाया कि उन्हें कोसों दूर तक भागना पड़ा। इस विकट संघर्ष में हुई सैन्य क्षति के बाद भी प्रताप ने हार स्वीकार नहीं करते हुए संघर्ष जारी रखा। उसने तत्कालीन गंभीर परिस्थितियों के अनुसार बड़े ही रचनात्मक ढंग से छापामार युद्ध प्रणाली का सम्पादन किया। अकबर ने मेवाड़ में स्थान-स्थान पर मुगल थाने स्थापित कर प्रताप को अधीन बनाने की व्यूह रचना (षड़यंत्र) रची परन्तु प्रताप की रचनात्मक रणनीति ने सारे प्रयासों को विफल करते हुए लगभग सभी मुगल चौकियों पर अपना अधिकार कर लिया। इस संदर्भ में यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि ऐसा कोई शासक नहीं हुआ जिसने राज्यविहीन रहकर अनवरत युद्ध लड़े हों और अपनी भूमि पर अधिकार करने में सफलता पाई हो।

प्रताप ने युद्ध-अभियानों के साथ-साथ प्रशासनिक कार्य सम्पादित करने में महत्ती भूमिका अदा की, उसका प्रशासन स्थायी नहीं बल्कि चलता-फिरता प्रशासन था जो परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहा, सैन्य प्रबन्ध के साथ संचार व्यवस्था आदि सारी व्यवस्थायें सुचारू ढंग से क्रियान्वित की गई। प्रताप की न तो स्थायी राजधानी थी और न ही आय के कोई मूलभूत स्रोत, फिर युद्धों में व्यस्त रहते हुए कला और साहित्य के क्षेत्र में रचनात्मक कार्य क्रियान्वित कर मेवाड़ की गौरवमय संस्कृति को जीवित रखते हुए देशभक्ति और स्वाभिमान का ऐसा अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया जिसकी ऐसी मिसाल कहीं भी अन्यत्र मिलना मुश्किल है।

भवन निर्माण :- सर्वप्रथम अपने शासन को कुछ स्थायी स्वरूप देने के लिये 1585 ई. में लूणा को परास्त कर चावण्ड में राजधानी स्थापित की जो भौगोलिक और सामरिक दृष्टि से एक सुरक्षित स्थान था। वहाँ अपने निवास के लिये मकान बनाये जो कला की दृष्टि से इतने महत्त्वपूर्ण नहीं परन्तु मजबूती के हिसाब से अनूठे कहे जाते हैं। स्थापत्य शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार चावंड के मकानों का निर्माण कराया गया। इसके राजमहल, चौपालें, घुड़सालें और मकान की दीवारें ध्वस्त हो चुकी हैं तथापि नींव-पाषाणों के आधार पर उस समय के भवन निर्माण के स्वरूपों का अध्ययन किया जा सकता है।

मूर्तिकला :- प्रताप का काल मूर्तिकला की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण एवं रचनात्मक रहा है। चावण्ड के मन्दिर में प्रतिष्ठित चामुण्डा देवी की मूर्ति, गणपति की मूर्ति, बदराणा में स्थित हरिहर के मन्दिर में विराजमान हरिहर (शिव और विष्णु का सम्मिलित स्वरूप) की मूर्ति उस समय की मूर्ति कला की विकास यात्रा का बोध कराती है। विशेषत: हरिहर की मनभावन सुन्दर मूर्ति तक्षण और अलंकरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के फलस्वरूप मेवाड़ की विशिष्ट प्रतिमाओं में उसकी गणना कर सकते हैं।

चित्रकला :- प्रताप की रचनात्मक प्रवृतियों में चित्रकला का विशेष स्थान रहा है। चावण्ड में बने चित्र, सादगी पूर्ण होते हुए भी अत्यन्त ही रोचक और गम्भीर भावनाओं से युक्त लगते हैं। प्रताप के महाप्रयाण के ठीक 8 वर्ष बाद के बने रागमाला के चित्र जिसे निसारदीन की तुलिका ने संजोया है उसी के आधार पर यह तथ्य उजागर हुआ है। इन चित्रों ने चावंड शैली के नाम से अपनी अलग पहचान बनाई। ये प्रताप के काल में अंकुरित हुई। चित्रकला की रचनात्मक छाप का सहज ही बोध हो जाता है।

अन्य निर्माण कार्य :- सूंधा के पहाड़ों में स्थित लोयणा ग्राम में रहते हुए जलापूर्ति के लिये एकबावड़ी और बगीचा बनवाया। प्रताप के हाकिम ताराचन्द ने सादड़ी (गोडवाड़) में रहते हुए वहाँ भव्य बावड़ी का निर्माण कराया जो वास्तुविन्यास की दृष्टि से अपना विशेष स्थान रखती है। इसके अलावा प्रताप ने छोटी-मोटी गढ़ियें, तालाब इत्यादि का निर्माण करवाया होगा उसकी खोज और सर्वेक्षण का कार्य किया जाना आवश्यक है।

साहित्य :- कला के साथ साहित्य के क्षेत्र में प्रताप का अभूतपूर्व योगदान रहा। यह उसकी रचनात्मक प्रवृतियों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू था। प्रताप के चरित्र और आदर्श के अनुरूप तत्कालीन और परवर्ती साहित्य ने आजादी व देश-भक्ति का अलख जगाया जिसकी प्रकाशमान किरणों से हमारे राष्ट्र के सपूत प्रेरणा लेते रहे हैं। प्रताप कालीन साहित्य को हम दो भागों में बाँट सकते हैं- प्रताप के आश्रित कवियों द्वारा रचा गया साहित्य और दूसरा अन्यान्य प्रख्यात कवियों के डींगल गीत।

आश्रित कवियों में चक्रपाणि मिश्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिसने मुख्य रूप से प्रताप के आदेश के अनुसार तीन ग्रन्थों की रचना की -

1. राज्याभिषेक पद्धति :- धर्म शास्त्रों के आधार पर जो मेवाड़ में राज्याभिषेक की पद्धति रही है, उन बिन्दुओं का ध्यान रखते हुए यह ग्रन्थ रचा गया। इसकी रचना अगर महाराणा प्रताप की राज्याभिषेक के पूर्व मानी जाये तो निश्चित रूपेण राज्याभिषेक के समय इस ग्रन्थ में उल्लेखित पद्धति का पालन किया होगा। यहाँ के महाराणा राज्याभिषेक उत्सव पद्धति के अनुसार सम्पादित करने में कितना बल देते थे यह बात उजागर होती है।

2. मुहूर्त्त मार्तण्ड :- मुहूर्त्त के पहलुओं से जुड़ा हुआ यह ग्रंथ उस समय की ज्योतिष विद्या का बोध कराता है। इससे यह धारणा पुष्ट होती है कि महाराणा ने अपने संकटकाल में विभिन्न प्रकार के कार्य क्रियान्वित करने और भविष्य की जानकारी के लिये इस प्रकार का ग्रंथ रचने की आज्ञा दी। इससे प्रताप का ज्योतिष के प्रति विश्वास और उसकी मनोदशा का अनुमान लगाया जा सकता है।

3. विश्ववल्भ :- कृषि-विज्ञान से सम्बन्धित यह ग्रन्थ विशेष महत्त्व रखता है। इसमें कृषि एवं पर्यावरण सम्बन्धी पहलुओं को बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से संजोने का प्रयास किया गया है। इसकी रचना हल्दीघाटी युद्ध के पश्चात जब कुछ शान्ति का वातावरण बना तब 1577ई. में की गई। इसके निम्नलिखित 9 अध्याय इस बात की ओर संकेत करते हैं कि लम्बे समय के अनुभव और अध्ययन के बाद इस जन-उपयोगी ग्रंथ का प्रणयन हुआ।

पहले अध्याय में जल स्रोतों की अनुसंधान विधियों का वृतांत दिया है। दूसरे अध्याय में जलसंचय एवं जल प्राप्ति हेतु जलाशयों, बावड़ियों, कुओं के निर्माण की विधियों पर प्रकाश डाला गया है। तीसरे अध्याय में मृदा

परीक्षण का ज्ञान कराते हुए वृक्ष और पौधे आदि लगाने के लिये किस प्रकार की भूमि उपयोगी होगी, इसका विवरण दिया है। चौथे अध्याय में पेड़-पौधों के रोपण की विधियाँ लिपिबद्ध हैं। पांचवें अध्याय में ऋतुओं के अनुसार पेड़-पौधों की सिंचाई किस प्रकार करनी चाहिये इसका बोध कराया गया है। छठे अध्याय में आँधी, तूफान, गर्मी, सर्दी के अलावा किटाणुओं से पेड़ व पौधों की रक्षा कैसे की जाये, इस ओर खेतीहर लोगों का ध्यान आकृष्ट कराया है। सातवें अध्याय में पेड़-पौधों के पोषण हेतु किस प्रकार की खाद का उपयोग करना चाहिये, वर्णित है। आठवें अध्याय में पेड़-पौधों आदि वनस्पति के लगने वाले रोगों और उनके उपचार व बचाव के बारे में ज्ञान कराया गया है। नवें अध्याय में फल व फूलों की सुगंध, उनका रंग और स्वाद का भान कराते हुए औषधि में उनका प्रयोग तथा उनकी जातियों में किस प्रकार विकास संभव है इसका संकेत भी दिया है।

इससे निम्न बिन्दुओं पर प्रकाश पड़ता है-

1. राज्यविहीन महाराणा प्रताप संकटकाल में रहते हुए जनकल्याण के लिये जागरूक थे। 2. वे कृषि विकास के स्वप्न को साकार करना चाहते थे। 3. उन्होंने पर्यावरण के महत्त्व को भली-भाँति समझने का प्रयास किया।

सब मिलाकर कहा जा सकता है कि प्रताप किसी प्रकार अपने पिता द्वारा स्थापित नव राजधानी को एक मूर्त रूप देना चाहते थे। उजड़े स्थानों को आबाद करने हेतु जल और खाद्य-सामग्री की पूर्ति करने के लिये किस प्रकार के उपाय किये जाने आवश्यक हैं, इसके बारे में भी उनका चिंतन था।

गोरा बादल पद्मिनी चौपाई :

जैन मुनि हेमरतन विरचित यह कृति देशभक्ति का एक अनूठा चित्रण प्रस्तुत करती है। इसकी रचना 1588ई. में ताराचन्द के अनुरोध पर सादड़ी में हुई। प्रताप के त्याग-मय जीवन और गोरा, बादल पद्मिनी के बलिदान से प्रेरित होकर रचे गये इस ग्रंथ में सामाजिक परम्पराओं का निर्वाह हुआ है। हेमरतन ने महाराणा प्रताप का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उसका प्रताप दिन-दिन बढ़ता जाएगा -

''पृथ्वी परगट राणाप्रताप, प्रतपई दिनदिन अधिक प्रताप''

यह कृति अत्यधिक लोकप्रिय हुई और इसकी अनेक प्रतिलिपियाँ समय-समय पर तैयार करवाई गई।

इसके अलावा हेमरतन प्रणीत अभयकुमार चउपई (वि.सं. 1636) महिपाल चउपई (वि.सं. 1636) शीलवती कथा और लालवती (वि.सं. 1673), रामरासो सीता चरित, जगदम्बा बावनी और शनिचर छंद आदि कृतियें शौर्य से हटकर मानव जीवन के विविध पहलुओं से जुड़ी हुई हैं। अभय कुमार चउपई में दान, शील, तप, मान, क्रोध, माया और लोभ सात विषयों पर प्रकाश पड़ता है-

दान, शील, तप, भावना चारु चरित कहेस।
क्रोध, मान, माया, वली, भोभादिक पभणेस।।

डींगल वीर गीत :-

महाराणा प्रताप के समकालीन कवियों में पृथ्वीराज राठौड़ के अलावा दुरसा आढा, जाड़ा मेहडू, रामा सांदू, गोरधन बोगसा आदि चारण कवियों ने प्रताप के शौर्य, साहस और सनातन मूल्यों को लेकर अनेक वीर गीत लिखे। प्रताप और पृथ्वीराज राठौड़ मौसेरे भाई के सूत्र में बंधे होने के कारण उनके बीच पारिवारिक सम्बन्ध थे। पृथ्वीराज की दृष्टि में जब क्षत्रिय नरेशों ने अपनी राजपूती को बेच दिया तब केवल प्रताप ही बचा रहा। वह कहता है कि यह हार (मीना बाजार) उठ जायेगा और ठगी अकबर चला जायेगा परन्तु स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करने वाले राणा प्रताप का नाम संसार में अमर रहेगा।

जासी हाट बात रहसी जग, अकबर ठग जासी एकार।
रह राखियों स्त्री धर्म राणै, सारा ले बरतें संसार।।

अकबर के दरबार में सम्मान प्राप्त करने वाले दुरसा आढ़ा ने भी स्थानीय नरेशों को लताड़ते हुए प्रताप का यशोगान किया -

सुखहित स्याल समाज, हिन्दू अकबर बस हुआ।
रोसीलो मृगराज पजे न राण प्रतापसी।।

(शेष पृष्ठ 23 पर)

श्रीकृष्ण की संहार लीला

– *गिरधारीसिंह डोभाड़ा*

जब-जब आवश्यकता हुई है, इस सृष्टि के पालनहार और रक्षक श्री हरि विष्णु अवतार रूप में अवतरित हुए हैं और आवश्यकता की पूर्ति की है। कुर्मावतार, मत्स्यावतार, नरसिंह अवतार, वामन अवतार, वराह अवतार आदि अपना कोई एक उद्देश्य लेकर आए और वह कार्य करके तुरन्त अपने धाम को वापस सिधार गए। जैसे-नरसिंह भगवान खंभे से प्रकट हुए, हिरण्य-कश्यप को मारा, प्रहलाद को आशीर्वाद दिया और अदृश्य हो गए। वामन रूप में आकर राजा बलि से अपने तीन कदम जितनी भूमि को दान में माँग कर तीसरे कदम में बलि को पाताल में धकेल कर स्वयं चले गए।

भगवान श्री राम का जन्म धरती पर फैली अराजकता और प्रबलतम बन रही आसुरी शक्ति को नष्ट करके सुराज्य-रामराज्य स्थापित करने एवं आसुरी वृत्ति की शक्ति को समाप्त कर सात्विक शक्ति को स्थापित करने के लिये हुआ था। त्रेतायुग में तामसिक वृत्ति धारण करने वाले आसुरों का इतना प्रभाव व त्रास बढ गया था कि धरती त्राहि-त्राहि पुकार उठी। असुरों का राजा रावण इतना शक्तिशाली हो गया था कि तीनों लोक स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल में भारी हो गया। उसने देवों को भी दास बना रखा था। इन असुरों का संहार करके तीनों लोक में शान्ति स्थापित करने के लिये श्री हरि विष्णु ने अयोध्या के पराक्रमी व प्रतापी राजा दशरथ के घर राम के रूप में जन्म लिया। अपने वनवास के समय असुरों का संहार किया। वनवास में सीताहरण का कारण रावण और असुरों को मारने का कारण बन गया। वे मर्यादा पुरुषोत्तम थे इसलिए मानव जीवन की मर्यादा में रहकर अपना कर्तव्य निभाया। अपने अवतार का उद्देश्य पूर्ण किया और ऐसा सुशासन किया कि इतने लम्बे समय के बाद भी रामराज्य सुशासन का उदाहरण बन गया।

त्रेतायुग समाप्त हुआ, द्वापर युग आया। द्वापर युग समाप्त होते-होते फिर आसुरी वृत्ति ने अपने करतब दिखाना प्रारम्भ किया। कंस, चाणुर, जरासंघ जैसे आसुरी वृत्ति के राजाओं ने प्रजा-प्राणियों में अपना त्रास फैला दिया। पृथ्वी फिर त्राहिमाम पुकार उठी। गीता में कहा है-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

अवतार का कारण बन गया। श्री हरि विष्णु ने आश्वस्त किया कि इन आसुरों का नाश करने मैं कंस की बहन देवकी की आठवीं संतान के रूप में अवतरित होऊँगा। कंस ने इस आकाशवाणी को जब सुना कि देवकी की आठवीं संतान उसका वध करेगी तो उसने देवकी व वसुदेव को कारावास में डाल दिया और देवकी की संतान को जन्म लेते ही मारता रहा। देवकी की आठवीं संतान को विष्णु के संकेत पर वासुदेव गोकुल में नन्द और यशोदा को सौंप आए। जब कंस को इसका पता चला तो उसने श्रीकृष्ण के रूप में गोकुल में नन्द और यशोदा के वहाँ पल रहे बालक को मारने के लिये बकासुर, चाणुर और पूतना जैसे कई मायावी राक्षस और राक्षसणियों को भेजा। श्रीकृष्ण ने अपनी बाल्यावस्था में ही उन सबको मार दिया। कृष्ण की संहार लीला बाल्यावस्था से ही शुरू हो गई। बाल्यावस्था और किशोरावस्था में ही संहार लीला, रासलीला व कई चमत्कार दिखाने प्रारम्भ कर दिये। किशोरावस्था में ही कंस और चाणुर का वध किया। किशोरावस्था तक उन्होंने जो-जो संहार किया वह अपनी रक्षा के लिये किया, क्योंकि वे असुर कृष्ण को मारना चाहते थे। युवावस्था के बाद शिशुपाल के सिवाय श्रीकृष्ण ने किसी का वध नहीं किया।

श्रीकृष्ण द्वारा मारे गये इन असुरों के बाद भी पृथ्वी पर अधर्म, अन्याय, असत्य, अनैतिकता और स्वार्थ का वातावरण फैला हुआ था और श्रीकृष्ण के जन्म का उद्देश्य अभी पूर्ण नहीं हुआ था, फिर उन्होंने संहार लीला क्यों बन्द कर दी? वे पूर्णावतार थे और चाहते तो क्षणमात्र में अधर्मियों और असुरों का नाश कर देते, लेकिन वे किसी अन्य को इसका निमित्त बनाना चाहते थे। लुप्त हुए गीता ज्ञान को फिर से संसार को देना चाहते थे। इस कार्य को पूर्ण करने के लिये योग्य पात्र के रूप में उन्होंने अर्जुन को चुना। महाभारत युद्ध होने जा रहा था। युद्ध के लिये आमने-सामने खड़ी दोनों पक्ष की सेना में अपने ही सगे-सम्बन्धियों को देखकर अर्जुन को विषाद हो गया और युद्ध करने से इन्कार कर दिया। श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं -

स्वधर्मपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।।
यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृश्म्।।

इस प्रकार क्षत्रिय के कर्म को महत्त्व देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि अपने धर्म को देखकर भी तू भय करने योग्य नहीं है, क्योंकि क्षत्रिय के लिये धर्मयुक्त युद्ध से बढकर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है। स्वर्ग के खुले द्वार समान प्राप्त धर्मयुद्ध भाग्यवान क्षत्रियों को ही प्राप्त होता है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को स्वधर्म पालन के लिये धर्मयुद्ध में प्रवृत होने के लिये प्रोत्साहित करते हैं।

जब अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से पूछता है,-

आख्याहि मे को भवानुग्र रूपो, नमोऽस्तु ते देव वर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्युंन हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्।।

अर्थात् हे देवों में श्रेष्ठ! आप कौन हैं, मैं विशेष रूप से जानना चाहता हूँ क्योंकि मैं आपकी प्रवृत्ति को नहीं जानता। तब भगवान कृष्ण कहते हैं-

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो, लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृतः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे, येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः।।

अर्थात् मैं लोकों का नाश करने वाला बढा हुआ महाकाल हूँ। इस समय इन लोकों को नष्ट करने के लिये प्रवृत हुआ हूँ। इसलिए जो प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित योद्धा लोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करने पर भी इन सबका नाश हो जाएगा। भगवान आगे कहते हैं,-

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व, जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेय, निमित्त मात्रं भव सव्य साचिन्।।

अर्थात्- इसलिए तू उठ! यश प्राप्त कर और शत्रुओं को जीतकर धन धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग। ये सब शूरवीर पहले से ही मेरे द्वारा मारे हुए हैं। हे सव्य साचिन्! तू तो केवल निमित्त मात्र बन जा।

इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण अब स्वयं कोई संहारक कार्य करना नहीं चाहते हैं। अभी भी अधर्मियों का संपूर्णतया नाश नहीं हुआ है, लेकिन उनका नाश अपने हाथों से न कर उनके नाश का श्रेय किसी अन्य को देना चाहते हैं। मगध का राजा जरासंघ कंस का ससुर था और बड़ा बलवान था। अपने जामाता कंस की हत्या का बदला लेने, श्रीकृष्ण को मारने के लिये बड़ी सेना लेकर मथुरा पर चढ आया। श्रीकृष्ण यह नहीं चाहते थे कि उनके कारण मथुरावासी परेशान हों, इसलिए वे मथुरा छोड़कर समुद्र के किनारे सुरक्षित स्थान पर द्वारिका नगर बसाकर रहने लगे। द्वारिका को अपनी राजधानी बनाई। आगे भीमसेन द्वारा द्वन्द्व युद्ध में जरासंघ का वध करवाते हैं और उसके द्वारा कैद अन्य राजाओं को मुक्त करवाते हैं। मगध की राजगद्दी पर जरासंघ के पुत्र को ही स्थापित करते हैं।

महाभारत का युद्ध होना निश्चित हो गया था। कौरव व पाण्डव दोनों पक्ष सेना का गठन कर रहे थे। भीम का पौत्र और घटोत्कच का पुत्र बर्बरीक भी युद्ध में भाग लेने के लिये आ रहा था। बर्बरीक को लेकर दोनों पक्ष चिंतित थे। कौरव इसलिए भयभीत थे कि उसके पास ऐसी संहारक शक्तियाँ थी कि वह पराजित होने

वाला नहीं था। पाण्डवों की चिंता दूसरी थी। बर्बरीक के गुरु ने वचन लिया था कि वह निर्बल पक्ष में ही रहकर युद्ध करेगा। वह पाण्डव परिवार का था और उनकी ओर से ही लड़ने को आ रहा था, तथा अभी संख्या में कम होने से पाण्डव सेना ही दुर्बल दिख रही थी। परन्तु पाण्डव यदि कौरव सेना का संहार कर उसे दुर्बल कर देते हैं तो गुरु को दिए वचन के कारण बर्बरीक कौरवों की तरफ से लड़ना प्रारम्भ कर पाण्डव सेना का संहार करेगा। अत: युद्ध में विजय के लिये बर्बरीक का नाश होना आवश्यक हो गया। बर्बरीक श्रीकृष्ण को मार्गदर्शक के रूप में गुरु मानता था। श्रीकृष्ण ने गुरु दक्षिणा रूप में बर्बरीक का अपने ही हाथों शीशदान माँग लिया। बर्बरिक ने अपने ही हाथों अपना शीश काटकर श्रीकृष्ण को दे दिया। श्रीकृष्ण ने बर्बरिक को यह महान यश दिलाया और महात्मा के रूप में पूजा जाने का उसे वरदान दिया।

श्रीकृष्ण ने एक और क्षत्रिय को महान सिद्ध करने के लिये अपनी प्रतिज्ञा तक तोड़ी। युद्ध में अर्जुन पूरे मन से पितामह भीष्म के साथ युद्ध नहीं कर रहा था, जबकि भीष्म पाण्डव सेना का संहार कर रहे थे। श्रीकृष्ण के बहुत समझाने पर भी अर्जुन पितामह के विरुद्ध पूरे मन से युद्ध नहीं कर रहा था। तब श्रीकृष्ण क्रोधित होकर रथ का पहिया उठाकर भीष्म की ओर दौड़े। भीष्म ने जब यह देखा तो अपने हथियार डालकर, रथ से उतरकर, दोनों हाथ जोड़कर श्रीकृष्ण के सामने आए और कहा-हे केशव! आपने अपनी प्रतिज्ञा क्यों तोड़ी? श्रीकृष्ण ने प्रतिज्ञा ली थी कि वे युद्ध में शस्त्र नहीं उठाएंगे। भीष्म की महानता बताने के लिये उन्होंने पहिया उठाया कि एक क्षत्रिय भगवान की प्रतिज्ञा भी तुड़वा सकता है। पू. तनसिंहजी ने गाया है-'इंसान झुके, भगवान को रुकना ही पड़ेगा।' श्रीकृष्ण के इस व्यवहार से अर्जुन ने अपने को संभाला और आगे युद्ध में भीष्म को बाणों से बींध कर शय्या पर लेटा देता है। भीष्म अर्जुन के इस पराक्रम से बहुत प्रसन्न होते हैं।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में शिशुपाल श्रीकृष्ण का अपमान करता है। जब वह सीमा से बाहर जाता है तो श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र से उसका वध कर देते हैं। श्रीकृष्ण जब शान्ति दूत बनकर दुर्योधन को समझाने के लिये हस्तिनापुर आते हैं तब दुर्योधन श्रीकृष्ण के प्रस्ताव को अस्वीकार करता है और श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने का आदेश सैनिकों को देता है। उस समय श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को नहीं मारा क्योंकि उन्हें भीम की प्रतिज्ञा याद थी। दुर्योधन ने अपनी जंघा दिखाकर द्रोपदी को वहाँ बैठने को कहा, तब भीम उसकी जंघा तोड़ने की प्रतिज्ञा करता है। महाभारत के युद्ध में भीम और दुर्योधन के बीच हुए गदा युद्ध में श्रीकृष्ण भीम को जंघा दिखाकर प्रतिज्ञा याद दिलाते हैं और संकेत पाकर भीम दुर्योधन की जंघा पर गदा का प्रहार करके उसे मार देता है। यहाँ भी निमित्त भीम को बनाते हैं।

ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि अधर्म के मार्ग पर चलने वाले अन्यायी, अधर्मी, स्वधर्म पालन से विमुख होने वाले, अधर्मियों को सहयोग देने वाले, अपने जातिगत स्वाभाविक कर्मच्युत लोगों का संहार; धर्म की राह पर चलने वाले, सत्य प्रिय, न्याय प्रिय और अपने स्वधर्म का पालन करने वाले कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों द्वारा करवा कर श्रीकृष्ण ने उन्हें यश दिलाया।

द्वारिका में श्रीकृष्ण के होते हुए भी समृद्धि और शक्ति के कारण यादव अहंकारी हो गए। आपस में द्वेषी और ईर्षालु हो गए। बुजुर्गों एवं सज्जनों का भी अनादर और अपमान करने लगे। सुरापान में रत रहकर आपस में झगड़ने लगे। श्रीकृष्ण को लगा कि अब ऐसे यादव कुल का भी नाश होना जरूरी है। गांधारी ने भी श्रीकृष्ण को श्राप दिया था-'हे केशव! तुम चाहते तो महाभारत का युद्ध न होने देकर कुरुवंश को सर्वनाश से बचा सकते थे, लेकिन तुमने ऐसा नहीं होने दिया। जिस प्रकार आपस में लड़कर कुरुवंश का सर्वनाश हुआ है, वैसे ही यादववंश का भी सर्वनाश हो जाएगा।' स्वच्छंदी यादवों के

नाश के लिये भी गांधारी के शाप को ही निमित्त बनाया।

श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम थे। उन्होंने आसुरी वृत्ति वाले लोगों का तो नाश किया ही, हमारी भीतरी आसुरी वृत्ति के नाश के लिये गीता के ज्ञान द्वारा मार्ग प्रस्तुत किया। जब तक हमारी भीतरी आसुरी वृत्ति नष्ट नहीं होती, वृत्ति को सात्विक मोड़ नहीं दिया जाता तब तक धर्म और कर्तव्य पालन का भाव और आचरण जाग्रत नहीं होता। इसीलिए श्रीकृष्ण ने गीता के माध्यम से ज्ञान दिया-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

अर्थात् स्वधर्म पालन करने हेतु कर्म करना ही अधिकार है, उसके फल पर अधिकार नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा कर्म न करने में भी आसक्ति न हो। श्रीकृष्ण केवल धर्म करने को ही कह रहे हैं। सगे-सम्बन्धी, परिवार जन, कर्तापन का भाव या फल की आसक्ति छोड़कर उनकी शरण में जाने में ही कल्याण है। कर्म करने का महत्त्व प्रतिपादित करने को कहते हैं-

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।।

अर्थात्- हे अर्जुन! मुझे इन तीनों लोकों में न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करने योग्य वस्तु अप्राप्त है, तो भी मैं कर्म में ही बरतता हूँ। उन्होंने जनक आदि ज्ञानीजन के उदाहरण देते हुए आसक्ति रहित होकर लोक हित के लिये कर्म करना उचित बताया।

श्री क्षत्रिय युवक संघ इसी मार्ग पर चल रहा है। गीता ज्ञान ही इस मार्ग का आधार है। पू. तनसिंहजी पढ लिखकर वकील बन गए थे। वकालत के माध्यम से खूब कमाया जा सकता था। राजनीति में दो बार विधायक और दो बार सांसद बने, यदि धन कमाना ही उद्देश्य होता तो राजनीति में रम सकते थे। अधिक धन कमाकर परिवार के लिये एशोआराम के साधन जुटा सकते थे, लेकिन उन्होंने तो पूरे समाज को ही परिवार बना लिया था। समाज में तामसिक वृत्ति ने पैर जमा रखे थे। स्वधर्म का ज्ञान ही नहीं रहा। कर्तव्य हीनता व्याप्त हो चुकी थी। कुसंस्कारों ने अपना परचम दिखाना प्रारम्भ कर दिया था। स्वाभिमान भुलाकर अहंकार, स्वच्छंदता तथा सिद्धान्तहीन मार्ग पकड़ लिया था। ऐसे में समाजहित, लोकहित, लोक संग्रह ही पू. तनसिंहजी का उद्देश्य बन गया।

समाज में व्याप्त स्वधर्म के प्रति कुंठा का नाश करना आवश्यक हो गया था। कुसंस्कारों के कारण स्वार्थ परायणता, भाई-भाई में ईर्षा-द्वेष, सामाजिक भाव का अभाव, अहंकार जैसी तामसिक प्रवृतियों का संहार करना आवश्यक हो गया था। इसके लिये पू. तनसिंहजी ने अपनी किशोरावस्था से ही विचार करना प्रारम्भ कर दिया था और इन दुर्गुणों का नाश करने का बीड़ा उठाया तथा इसके लिये निमित्त बनाया श्री क्षत्रिय युवक संघ को। संघ कहता है,-

संघ ने शंख बजाया भैया सत्य जयी अब होगा रे।
क्षात्रधर्म की दिव्य प्रभा से जग उजियारा होगा रे।।
मैं निर्झर हूँ पर्वत से बह गहरा नीचे तक आया हूँ।
पगली धरती के आंचल को मैं तीर्थ बनाने आया हूँ।।
सफल बनूं या नहीं बनूं मैं फिर भी बहता जाता हूँ,
अपने तप की ले मशाल मैं ज्योति जगाता आता हूँ,
हारे अर्जुन को कर्मयोग का पाठ पढाने आया हूँ।।

संघ हमें कर्मयोग और सांख्य योग का पाठ पढाता है। अपना कर्तव्य समझकर कर्म करने का अभ्यास करवाता है। हम खेल खेलते हैं तो कौन जीतता है और कौन हारता है, उसकी हमें परवाह नहीं पर नियमानुसार अनुशासन में रहकर खेल खेलना है, इसे कर्तव्य कर्म का ही अंग मानना है। फलासक्ति छोड़कर खेल खेलना है। खेल में जो व्यक्ति या जो दल जीतता है, उसको पुरस्कार में क्या मिलता है? वह व्यक्ति या दल तीन बार 'क्षात्रधर्म की जय' बोलता है, सभी अनुसरण करते हैं। अर्थात् जीत और हार के लिये खेल नहीं खेलते और हार या जीत का जो भी फल मिलता है उस पर हमारा

(शेष पृष्ठ 33 पर)

विचार-सरिता

(द्वात्रिंशत् लहरी)

- विचारक

प्राणीमात्र की यह चाहना बनी रहती है कि वह सुखी हो जाय। जीवन में कभी भी दु:ख न आए। इसी तरह आकांक्षाओं और इच्छाओं का धनी मनुष्य कभी भी दु:खी होना नहीं चाहता। विचार द्वारा देखा जाय तो दु:ख वास्तविक नहीं है। यह हमारे मन की उपज है। मन जिस परिस्थिति को अनुकूल मानता है वह जब तक बनी रहती है तब तक उसमें उसे सुख का अहसास होता है और जिस परिस्थिति को वह प्रतिकूल मानता है वह परिस्थिति उसके लिये दु:खरूप है। एक ही परिस्थिति एक के लिये दु:खरूप है और दूसरे के लिये वही परिस्थिति सुखरूप हो सकती है। बंदीगृह में जो कैदी हैं वे वहाँ से जब चाहें तब बाहर नहीं जा सकते और उनकी चाह है कि हमें बाहर निकाला जाय। इसलिए वे सभी दु:खी हैं। उसी बंदीगृह में रहने वाला अधीक्षक और भोजन पकाने वाले रसोड़दार भी वहीं रहते हैं, पर वे उसमें दु:ख का किंचनमात्र भी अहसास नहीं करते। वहाँ रहने से उनको वेतन मिलता है तथा वे जब चाहें तब बाहर जा भी सकते हैं। अत: उस एक सी परिस्थिति में जेली को दु:ख का अहसास होता है तथा जेलर को सुख का अहसास होता है।

मन की अल्पता ही दु:ख का हेतु है। जो है वह पर्याप्त नहीं है, इससे अधिक की चाह ही दु:ख का कारण है। दूसरों की समृद्धि, कीर्ति जो खुद को चाहने पर भी सुलभ नहीं हो रही है, यह भी दु:ख का कारण है। अधिकतर लोग खुद की निर्धनता से इतने दु:खी नहीं हैं, जितने दूसरों की सम्पन्नता और विलासिता से हैं।

दु:ख का दूसरा कारण है-खोने का भय। जो मिला है वह चला न जाय। धन, सम्पदा, पद, प्रतिष्ठा, पुत्र, पत्नी आदि जो मिले हैं वे ज्यों कि त्यों बने रहें यह मन की चाह है। परन्तु नाम-रूप से भासित कोई भी पदार्थ, वस्तु, व्यक्ति आदि कभी भी स्थिर बने हुए रह नहीं सकते। सभी दृश्यजगत प्रतिक्षण क्षरण की ओर जा रहा है अत: बिछुड़ने का भय भी दु:ख का जनक है।

मनुष्यता का अर्थ यह नहीं है कि हम दु:खी होकर जीयें। मनुष्यता का अर्थ है कि हम शुभ संकल्प के साथ जीयें। जैसी भी अनुकूल या प्रतिकूल जो परिस्थिति पैदा हुई है वह हमारे प्रारब्ध का परिणाम है। वह आई है जाने के लिये। अत: हम उस परिस्थिति से चिपकें नहीं बल्कि उस परिस्थिति के दृष्टा बनकर जीना सीखें। साक्षी बनकर जीने से कभी भी दु:ख नहीं होगा। संसार का स्वरूप ही अनुकूलता-प्रतिकूलता है अत: जैसी भी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति हो उससे सम्बन्ध मत जोड़ो। उसके दृष्टा बनकर साक्षी भाव में रहना सीखें। सद्विचारों से सत् संकल्प उठते हैं और जब अच्छे व दिव्य संकल्प होंगे तो सब अनुकूल ही अनुकूल लगेगा। प्रतिकूलता की फसल सूख जायेगी और सदैव हरियाली ही हरियाली दृष्टिगोचर होगी। अन्त:करण को आध्यात्मिक बनाना ही भगवत्ता है। इसलिए अपनी विचार शक्ति को आध्यात्मिक बनाने हेतु सदैव सत्संग और सत्शास्त्रों का अध्ययन नितांत आवश्यक है।

भागवत के प्रारम्भ में आता है कि भक्ति अपने बुढ़े पुत्रों, ज्ञान और वैराग्य को पुन: युवान बनाना चाहती है और देवऋषि नारद से प्रार्थना करती है कि आप कोई उपाय कीजिये जिससे मेरे ये दोनों पुत्र युवाशक्ति को धारण करके उठ खड़े हों। तब नारदजी उन्हें अध्यात्म चर्चा के माध्यम से भागवत के श्लोक सुनाते हैं तब जो माता से पहले वृद्ध हुए वे पुत्र ज्ञान और वैराग्य, पुन: शक्तिमान बनकर खड़े हो जाते हैं। ऐसे ही हमें भी ध्यान रहे कि हमारा ज्ञान और वैराग्य कहीं सुषुप्त न हो जाय। इसके लिये हमें सदैव अध्यात्म चर्चा का पुरुषार्थ करते रहना चाहिये। उन्हें अध्यात्मिक खुराक की जरूरत है जिससे वे कभी शिथिल नहीं होते।

हमारे सद्ग्रन्थों में चार प्रकार के पुरुषार्थ की व्याख्या आती है, जिसमें पहला और मुख्य पुरुषार्थ धर्म कहा गया है। धर्म ही जीवन की धुरी है। जिसके जीवन

में धर्म का अभाव हो जाता है वह जीते जी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। वह इस भूमण्डल पर एक सूखे हुए ठूंठ की तरह बोझ मात्र है। वृक्ष की उपादेयता तभी तक है जब तक वह हरा भरा है, छाया व शीतलता देता है। फल और फूलों से लदा होने से उस पर पक्षी व छाया में राहगीर भी विश्राम लेता है। पर जब वह सूख जाता है अर्थात् अपनी उपयोगिता खो देता है तो लोग उसे काटकर ईंधन के रूप में जला देते हैं। ऐसे ही व्यक्ति के जीवन में धर्म है तो वह कीर्ति, यश और समृद्धि पाता है। धर्म के दस लक्षणों के बारे में कहा है-

क्षमा, अहिंसा, दया, मृदु, सत्य वचन, तप, दान।
शील, शौच, तृष्णा रहित धर्म लिंग दस जान।।

जिस व्यक्ति के जीवन में ये उपरोक्त दस लक्षण विद्यमान हों वही धर्मात्मा कहा जा सकता है। साधकों को चाहिये कि हमें भी अपने भीतर इन लक्षणों के होने का अहसास होता है कि नहीं, इसकी जाँच करते रहना चाहिये। हमारी संस्कृति, राष्ट्र और जीवन धर्म पर टिके हुए हैं। धर्म के लिये ही तो श्रीराम ने 14 वर्ष तक राजलक्ष्मी का परित्याग किया। तापस वेष में रहते हुए कन्द मूल खाकर भूमि पर शयन किया, लेकिन धर्म की ध्वजा को कभी भी झुकने नहीं दिया। राजधर्म निभाने के लिये जनभावना का आदर करते हुए, 'सीता पवित्र है' यह बात जानते हुए भी वैदेही को अकेले वन में छोड़ने का कठोर निर्णय लिया। कठिन परिस्थितियों में भी जो धर्म को नहीं छोड़ता, उसका नाम राम है।

धर्म को जीवित रखने हेतु महाराजा हरिश्चन्द्र ने धरा के अधिपत्य को ठुकरा कर विश्वामित्र को दिये गये वचन की पालनार्थ डोम के घर बिकना स्वीकार किया। राजा मोरध्वज ने धर्म हेतु आँख में आँसू लाए बिना अपने इकलौते पुत्र को आरी से चीर कर व्याघ्र को खिला दिया। गौरक्षक दलीप ने अपने आप को शेर के सामने उपस्थित किया। राजा शिवि ने शरणागति धर्म की रक्षार्थ एक कपोत के बदले अपने आपको तराजू में तोल दिया। न जाने ऐसे कितने महापुरुष हुए जिनके बलिदान के कारण आज भी धर्म जिन्दा है। उन क्षत्रिय कुल के कुलशिरोमणि राजाओं ने जो कीर्तिमान उपस्थित किये, आज उनकी कोई नकल नहीं कर सकता।

धर्म का जागरण तब होता है जब हमारे अन्त:करण पवित्र हों। अन्त:करण में जब तक मल और विक्षेप रूपी दोषों का समावेश होगा तब तक धर्म और नीति का उदय हो ही नहीं सकता। धर्म धारण करने योग्य मन के लिये आहार-शुद्धि का होना आवश्यक माना गया है। आहार स्वाद के लिये नहीं अपितु शरीर-निर्वाह के लिये होना चाहिये। शरीर और मन को बलिष्ठ व पवित्र बनाए रखने के लिये आहार सम्बन्धी चार शुद्धियों को विशेष ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

1. द्रव्य शुद्धि :- अनीति, अनाचार, बेईमानी, ठगी, चोरी आदि अधर्म क्रिया से उपार्जित द्रव्य से यदि हम भोजन सामग्री खरीदते हैं और उसे पकाकर खाते हैं तो वह आहार हमारे तन और मन दोनों को दूषित करेगा। अन्न से ही मन बनता है और दूषित मन में अधर्म पूर्वक विचार उठेंगे। अत: हमारी कमाई शुद्ध व नेक नीयत से उपार्जित होगी तो उससे खरीदी गई भोज्य सामग्री का आहार करने से हमारे अन्त:करण पवित्र बनेंगे।

2. क्षेत्र शुद्धि :- भोजन पकाते समय व भोजन करते समय चौके की पवित्रता का भी महत्त्व कम नहीं है। नेक नीयत कमाई से खरीदा गया अन्न, सब्जी, फलादि यदि अपवित्र व अस्वच्छ स्थान पर बनाया जाय या खाया जाय तो वह आहार हमारे मन में विकार पैदा करेगा। अत: भोजन पकाते समय व खाते समय क्षेत्र-शुद्धि का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये।

3. भाव शुद्धि :- भोजन पकाने वाली माता की पवित्र भावना से पकाया गया भोजन व पवित्रता से परोसा गया भोजन रुचिकर व सुगन्धिवर्द्धक तथा पुष्टिवर्द्धक होता है। भोजन करने वाले को भी शुद्ध भाव से प्रसाद पाना चाहिये। क्रोध, ईर्ष्या, उत्तेजना, चिन्ता, मानसिक तनाव, भय आदि की स्थिति में किया गया भोजन शरीर के अन्दर दूषित रसायन पैदा करता है। अत: प्रसन्नतापूर्वक व

(शेष पृष्ठ 29 पर)

भिनाय की रानी / बोराज की बेटी

– स्व. श्री सवाईसिंह धमोरा

कछवाहों की एक प्रमुख शाखा है खंगारोत। नराणा के राव खंगार के वंशज कहलाते हैं खंगारोत। राव खंगार के पिता जगमाल, आमेर के कछवाहा राजा पृथ्वीराज के पुत्र थे। इसी प्रसिद्ध खंगारोत वंश का एक ठिकाना जयपुर जिले में है बोराज। जिसके संबंध में कछवाहों की मांड में गाया जाता है -

खग बांका खंगार रा, गढ़ बांको बोराज।
जग चावा जगमाल री, फिरै दुहाई आज।।

खंगारोत खग बाहुडा, बांका भट बोराज।
पाट नराणो अंजसै, आमेरा-महिराज।।

ऐसे वीर बांकुरे संस्थान (ठिकाना) बोराज के ठाकुर शिवसिंह खंगारोत की पुत्री विजयकुंवरि को हाथियों से बड़ा स्नेह था। वह हाथी को गणपति का प्रतीक मानते हुए गणेशजी की भाँति ही पूज्य मानती हुयी उनमें श्रद्धा भाव रखती थी। ठिकाना बोराज जयपुर राज्य का हाथी-बंध ठिकाना होने के कारण वहाँ हाथी पाले जाते थे। ठाकुर शिवसिंह को भी हाथियों से विशेष लगाव होने के कारण ठिकाने में नामी हस्ती रखे जाते थे। इस कारण उनके बाल गोपालों का भी हाथी से आत्मिक लगाव होना स्वाभाविक है। उनके बालक हाथियों को अपने हाथ से गन्ने (सांठा) खिलाया करते थे। हाथी अपनी सूंड़ को इधर-उधर घुमाते हुए इन बालकों का मनोरंजन किया करते थे। इसी कारण ठाकुर शिवसिंह की पुत्री विजयकुंवरि का भी हाथी से लगाव हो गया। वह उसे नित्य प्रति रोट (मोटी मोटी रोटियाँ) खिलाया करती थी। गन्ने की मौसम में बड़े प्रेम से गन्ने खिलाती थी। हाथी अपनी सूंड़ के द्वारा बाईसा के हाथ से रोट लेकर आनन्द की अनुभूति करते हुये, उसे अपने मुख में रख लेता था। पशु-पक्षी पालक यह भलीभाँति जानते हैं कि नित्य प्रति के इन संबंधों के कारण पशु-पक्षी भी उन मनुष्यों के प्रति इतने संवेदनशील हो जाते हैं कि उनके देखे बिना उन्हें अटपटा लगता है। किसी दिन संयोगवश उनका प्रेमी प्राणी समीप आकर उन्हें दुलारता नहीं तो वे उदास एवं अनमने से रहते हैं। ऐसा ही आत्मीय संबंध था ठाकुर शिवसिंह के गढ में बंधने वाले हाथी और उनकी हस्ती पालिका पुत्री विजयकुंवरि का। इस आत्मीय संबंध को दृष्टिगत रखकर ही ठाकुर साहिब ने अपनी प्रिय पुत्री के विवाह में उस हाथी को दहेज में देने का निश्चय कर लिया था।

वयस्क होने पर बाईसा विजयकुंवरि का विवाह प्रसिद्ध ऐतिहासिक योद्धा, स्वातंत्र्य समर के प्रेरणास्रोत, महाराणा प्रताप जैसे संघर्षशील व्यक्तित्व के प्रेरक प्रतापी व्यक्तित्व राव चन्द्रसेन राठौड़ के वंशज, स्वातंत्र्य सेनानी राजा बलवन्तसिंह भिनाय के पुत्र राजा मंगलसिंह के साथ हुआ, तब वह हाथी दहेज में भिनाय के राजा को दे दिया गया।

राजा मंगलसिंह का यह दूसरा विवाह था। उनकी पहली रानी शेखावतजी बठोठ के ठाकुर भोपालसिंह शेखावत की पुत्री थी। जो क्रान्तिकारी ठाकुर डूंगरसिंह शेखावत के भतीजे थे। उन्होंने आगरे की जेल से अंग्रेजों के फंदे से छुड़ा कर अपने काका डूंगरसिंह को बठोठ लाने में जवाहरसिंह शेखावत के प्रमुख सहयोगी के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उन दिनों भिनाय का क्रांतिकारी घराना गौरी सत्ता का प्रबल विरोधी माना जाता था। इसी कारण उनके विवाह संबंध अपनी समान विचारधारा वाले लोगों से ही होते थे। ऐसा ही घराना था बोराज के खंगारोतों का भी। क्षत्रिय परम्परा के अनुसार विजयकुंवरि, विवाह उपरान्त भिनाय में खंगारोत जी राणी साहिबा के रूप में संबोधित की जाती थी। राजपूती परम्परा में विवाहित महिलायें पीहर पक्ष में नाम से और सुसराल पक्ष में अपने वंश के नाम से संबोधित की जाती हैं। भिनाय में खंगारोत रानी विजयकुंवरि की सांस्कृतिक

प्रतिभा, कठोर अनुशासन, राजकीय रस्मोरिवाज के प्रति असीम लगाव की कहानियाँ आज भी बूढ़े-बडेरों के मुख से आदर भाव के साथ कही सुनी जाती हैं। वह अपने पति राजा मंगलसिंह की भाँति ही अपनी प्रजा में लोकप्रिय थी। बाहर दीवानखाने में राजा मंगलसिंह नित्य प्रति सार्वजनिक दरबार लगाते थे, अपनी प्रजा के दुख-दर्द सुनने और निवारण करने हेतु। भीतर जनाने महलों में दरीखाना लगता था-रानी खंगारोतजी का। जहाँ बे-रोक-टोक भिनाय की कोई भी महिला आ जा सकती थी। रानी बड़े प्रेम से महिलाओं की समस्यायें सुनकर उनका समाधान निकालती थी। पति और पुत्रों द्वारा सतायी गयी महिलाओं की समस्या वह राजा साहब से कहकर सुलझाती थी। भिनाय के लोग आज भी यह कहते सुने जाते हैं कि खंगारोत जी के समय किसी भी परिवार में यहाँ टूट नहीं थी। सब प्रेम से रहते थे। यदि कभी कदास परिवार में कहा सुनी हो जाती तो खंगारोत जी के मार्गदर्शन से पुन: शान्ति हो जाया करती थी।

ऐसी वीर प्रसूता, वीर भार्या विजयकुंवरि विवाह कर भिनाय आई तो उनके दहेज का हाथी भिनाय आया जिसे वह प्रतिदिन अपने पितृ गृह (पीहर) में रोट खिलाया करती थी। विवाह के उपरान्त यह स्थिति बदल चुकी थी। उस हाथी ने अपने ठाकुर की पुत्री को भिनाय के जनाने महलों में प्रवेश करते निहारा था। उसके दर्शन अब उसे दुर्लभ हो गये थे। इस कारण वह अनमना सा रहने लगा था। पहले तो फीलवान (महावत) ने सोचा कि स्थान परिवर्तन के कारण ऐसा स्वाभाविक है। दो चार रोज में अभ्यास हो जावेगा परन्तु निरंतर सात दिन होने के कारण महावत को चिंता हुयी। उसने दवा-दारू की चेष्टा की, परन्तु हाथी ने उसे भी अंगीकार नहीं किया। हाथी की मनस्थिति को महावत जान नहीं पाया क्योंकि उसे बोराज के उस वातावरण की कोई जानकारी नहीं थी। नव विवाहिता रानी ने भी स्वाभाविक नारी स्वभाव एवं संकोचवश ऐसी कोई जानकारी नहीं दी। आखिर तंग आकर हाथी क्रोधित हो उठा। उसके अहिंसात्मक शस्त्र, अनशन का कोई असर न देखकर वह हिंसक हो गया। सभी बंधन तोड़कर वह जनानी ड्योढ़ी की ओर बढ़ गया। चिंघाड़ने लगा। पैर पटकने लगा। उसका बीभत्स रूप देखकर भिनाय के गढ़ में खलबली मच गयी। महावत का अंकुश बेकार साबित हो गया। स्थिति भयावह होने के कारण राजा जी को हाथी को गोली मारकर स्थिति पर नियंत्रण करने का परामर्श ठिकाने के कर्मचारियों ने दे दिया। राजाजी ने भी उस परामर्श को मानते हुए गोली मारने की आज्ञा प्रदान कर दी। परन्तु कर्मचारी वर्ग का साहस नहीं हुआ। यह हाथी नयी रानी खंगारोतजी के दहेज में आया हुआ था। दासियों के द्वारा यह समाचार महलों में पहुँचे। रानी को चिंता हुयी। उसने तुरन्त बड़ी रानी शेखावतजी के द्वारा राजाजी तक अपनी व्यथा पहुँचाई। बोराज से ही मैं आपको वरण करके आयी हूँ। इसी उपलक्ष में यह हाथी आया है। बोराज का होने से यह मेरे अनुज के समान है। मेरे अनुज को गोली मारना क्या भिनाय घराने हेतु शोभा की बात है। राजा मंगलसिंह ने खंगारोतजी की इस भावना के प्रति सम्मान करते हुये शेखावतजी को कहा कि-इस हाथी के प्रति मेरा भी उतना ही लगाव है जितना खंगारोतजी का परन्तु करूं तो क्या करूं यह अंकुश ही नहीं मानता। कल कोई मिनख (मनुष्य) को क्षति पहुँचाए तो इस बिगड़े जानवर से स्थिति और भी दु:खद हो सकती है।

रानी खंगारोतजी तक यह संवाद पहुँचा तो वह तुरन्त ही संकोच छोड़कर ड्योढ़ी पर आ खड़ी हुयी, जहाँ हाथी ने उत्पात मचाकर आतंक का माहौल बना रखा था। उनके ड्योढ़ी पर आते ही हाथी सहम गया। उसे अपनी स्वामिनी को निहार कर अतीव प्रसन्नता हुयी। वह शान्त होकर सूंड इधर-उधर हिलाकर प्रसन्नता व्यक्त करने लगा।

रानी खंगारोतजी ने अश्रुपूरित नेत्रों से उसे निहारा और उसे संबोधित कर कहने लगी-'क्यों उत्पात मचाता है। क्या तुझे ज्ञान नहीं कि यह मेरा ससुराल है-पीहर नहीं। मैं भी तो यहाँ राजमहलों के कठोर नियंत्रण में

रहती हुयी मर्यादा के अंकुश को मानकर सात पर्दों में रह रही हूँ। पीहर में चिड़िया की भाँति फुदकने और चहकने वाली राजपूत बाला, ससुराल में ऐसी ही मर्यादा में रहती है, इसे तुम क्यों नहीं समझते। तुम भी यहाँ मेरे पीहर से मेरे साथ आये हो। तुम्हें भी उसी मर्यादा का निर्वाह करते हुये महावत के अंकुश में रहना चाहिये। इस प्रकार उत्पात मचाकर मेरे पीहर का नाम क्यों उछाल रहे हो।'

हाथी पूर्णतया शान्त हुआ अपनी स्वामिनि के स्नेह उद्‌गार एवं व्यथा को समझता हुआ सहज भाव से खड़ा रहा। उसके हावभाव इस बात का स्पष्ट संकेत दे रहे थे कि उसे अपने किये पर पश्चाताप हो रहा है। रानी ने अपनी दासियों को आदेश दिया कि वह इसके कान पकड़कर महावत के पास ले जायें जो मारे भय के पास में भी नहीं फटक रहा था। दासियाँ सहमती हुयी उपस्थित तो हो गयी परन्तु वे भयातुर भाव से अपनी स्वामिनी की ओर निहारती रही। रानी ने स्वयं हाथी का कान पकड़कर दासियों के हाथों में दिया और कठोर शब्दों में कहा-'ले जावो इसे फीलवान जी के पास।' हाथी की सूंड के हाथ का स्पर्श कराते हुए उस गजराज को भी संबोधित किया-'खबरदार जो भविष्य में ऐसा उत्पात किया। तुम्हारी और मेरी दोनों की मर्यादा यही है कि यहाँ का अंकुश मानते हुए ससम्मान यहाँ की मर्यादा का पालन करें।' और वह महलों में चली गयी उपस्थित जनसमूह ने देखा कि-उत्पात से आतंक पैदा करने वाला हाथी सहज भाव से महावत की ओर बढ़ रहा था। उसके दोनों कान दो दासियों के हाथों में थे।

पृष्ठ 14 का शेष

कला, साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में महाराणा प्रताप का योगदान

प्रताप के विरोधी अनुज जगमाल के आश्रित कवि जाड़ा मेहडू भी प्रताप की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा-

हाथी बंध घणा घणा हैमरबंध, कसू हजारी गरब करो।
पातल राण हसै त्यां पुरखां, भाड़े महलों पेट भरो।।

इसी प्रकार डूंगरसी रतनू, रामो सांदू, गोरधन बोगसा आदि कवियों ने प्रताप के गुण-गान कर उसकी धवल कीर्ति को फैलाने का प्रयास किया। प्रताप ने दिवेर के अभियान में बेहलोल खाँ का वध कर अपने भुज-बल का परिचय दिया। उन्होंने खड़ग-प्रहार कर उसका सिर, कवच, पाखर और घोड़े को एक साथ काट दिया इसका वर्णन कविनाथ कविया ने बड़े रोचक ढंग से किया है-

गरवंद मान रै मुहर ऊभी हुतो दुरत गत,
सिलहपोसां तणा जूध साथै।
तद बही रुक अणचूक पातल तणी,
मुगल बहलोल खां तणै माथै।।

वीर आवसाण केवाण उजबक बहै,
राण हथ बाह दुय राह रटियौ।
कट झमलसीस बगतर बरंग अंग कटै,
कटै पाखर सुरंग तुरंग कटियो।।

इस प्रकार प्रताप की देशभक्ति और आदर्श मूल्यों से प्रभावित होकर ऐसा रचनात्मक साहित्य रचा गया जो राष्ट्र के सपूतों के लिये प्रेरणा का स्रोत बना।

कला, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में ये रचनात्मक प्रवृतियाँ इस बात की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराती हैं कि वीर-वर प्रताप ने विषम परिस्थितियों में अपने देश और कुल-मर्यादा के लिये साम्राज्यवादी शक्ति से टक्कर लेने के साथ जन-कल्याण के लिये कई निर्माण कार्य सम्पादित किये और साहित्य के क्षेत्र में अपना अनूठा योगदान प्रस्तुत कर राष्ट्र के गौरवमय इतिहास का वह सिर ताज बना। तत्कालीन कला से जुड़े सारे पहलुओं की नये सिरे से खोज करने के साथ ही उस समय की रचनाओं का सम्पादन व प्रकाशन करने की महत्ती आवयश्यकता है तभी हम प्रताप के बहुआयामी पक्षों को ठीक से समझ पायेंगे और उनके आदर्शों को जन-जन तक पहुँचाने में सफल होंगे। हमारे क्षत्रिय समाज के लिये प्रातःस्मरणीय प्रताप प्रकाश स्तम्भ है, उनके आदर्श मूल्यों से प्रेरणा लेने की महत्ती आवश्यकता है।

संत-शिरोमणि सतीमाता रूपकंवरजी (बाला सती)

- *भंवरसिंह मांडासी*

रावणियाँ राजस्थान के जोधपुर जिले की बिलाड़ा तहसील में स्थित एक छोटा-सा गाँव है। अब इस गाँव का नाम इस गाँव की ही प्रख्यात सुपुत्री बाला सती माता रूपकंवरजी के सम्मान में 'रूप नगर' रख दिया गया है। रूपनगर पहुँचने के लिये जोधपुर से अजमेर जयपुर जाने वाली मुख्य सड़क पर चलें तो बिलाड़ा से लगभग 7 कि.मी. पहले एक सड़क मुड़ती है जो खेजड़ला जाती है तथा खेजड़ला से एक पक्की सड़क रूपनगर को जाती है। मुख्य सड़क से खेजड़ला की दूरी 13 कि.मी. है तथा खेजड़ला से रूपनगर की दूरी 8 कि.मी. है।

रूपनगर में करीबन 400 घरों की बस्ती होगी जिसमें विभिन्न समुदाय एवं जातियों के लोग निवास करते हैं। रियासत काल में रावणिया जोधपुर रियासत का एक खालसा गाँव था जिसकी जागीर बाद में जोधपुर महाराज ने एक शेखावत सरदार व तीन कूंपावत सरदारों को प्रदान कर दी थी। प्रत्येक सरदार को गाँव की एक चौथाई जागीर बंटवारे में मिली थी।

इस सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक घटना हुई थी जिसका प्रसंग इस प्रकार है :- एक बार जालोर किले पर शत्रु का घेरा पड़ा था। उस समय जालोर दुर्ग के रक्षकों में घाटवा गाँव के निवासी श्री मदनसिंह शेखावत भी सम्मिलित थे। घाटवा गाँव दांतारामगढ़ के पास है तथा नागोर जिले में आता है। श्री मदनसिंह शेखावत जालोर किले की रक्षा के लिये अदम्य साहस और वीरता के साथ भयंकर युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। उनकी असाधारण वीरता, बलिदान व सेवाओं के उपलक्ष में उन्हें व तीन कूंपावत सरदारों को, जिन्होंने उनके समान ही वीरता का परिचय दिया था, सभी को दरबार द्वारा सम्मिलित रूप से रावणिया गाँव की जागीर प्रदान की गई। तत्पश्चात् श्री मदनसिंह के सुपुत्र श्री बहादुरसिंह अपने परिवार सहित रावणिया पधारे व वहीं बस गये। श्री मदनसिंहजी का वंश वृक्ष इस प्रकार है -

श्री मदनसिंह
|
श्री बहादुरसिंह
श्री सुल्तानसिंह — श्री बैरीसालसिंह
श्री चन्दरसिंह (भाबोसा) — श्री लालसिंहजी
शायर कंवर बाईसा — रूपकंवरजी (सतीजी बापजी) — श्री सांवलसिंहजी — श्री रसालसिंहजी — श्री विजयसिंहजी

राजपूत सती साध्वियों में बाला सतीजी का नाम जनमानस में बड़ी श्रद्धा व आदर के साथ लिया जाता है। निरंतर 43 वर्षों तक निराहार रहकर सतीजी ने प्रभु की वंदना की तथा अपनी तपस्या के बल से सिद्धियाँ प्राप्त कर कितने ही पीड़ितों की नैया पार की। सम्भवत: इस प्रकार की सती साध्वी विश्व में आज के कलियुग में मिलना दुर्लभ है। आध्यात्म के क्षेत्र में सूक्ष्म शरीर में रमण करने वाली बाला सतीजी के नाम से विख्यात सती रूपकंवर शेखावाटी के संस्थापक रावशेखा के वंश में उत्पन्न राजा रायसल दरबारी के पुत्र लाडाजी की वंशज थी।

लालसिंह शेखावत की धर्मपत्नी श्रीमती जड़ावकंवर के गर्भ से जन्माष्टमी सोमवार वि.सं. 1960 तदनुसार 16 अगस्त, 1903 को रात्रि 12 बजकर 01 मिनट पर सतीजी का जन्म हुआ। बालिका का नाम रूपकंवर रखा गया।

सतीजी के दादोसा धार्मिक प्रवृति के व्यक्ति थे। इन्होंने बालिका को गुरु मंत्र दिया-''शिव कहे सुन पारवती, हरि का नाम बिसार मती'' दादोसा का सत्संग पाकर रूपकंवर 5-6 वर्ष की आयु में ही समाधि लीन रहने की अभ्यस्त हो गई तथा नौ वर्ष की आयु तक अवधूत ही बनी रही। बाबोसा के समझाने-बुझाने पर वस्त्र धारण किये। बड़ी होने पर उनको रामस्नेही साधु गुलाबदासजी जैसे गुरु मिले। रूपकंवरजी की बड़ी बहिन शायरकंवर की शादी बाला गाँव के जुझारसिंह के साथ हुई थी। शायरकंवर का शीघ्र ही निधन हो गया था। अत: दादोसा के आग्रह पर रूपकंवर (सतीजी) की सगाई जुझारसिंह से कर दी गई। बैशाख शुक्ला एकादशी सम्वत 1976 (10 मई, 1919) को शादी सम्पन्न हुई। परन्तु शादी में ही पति के इतना तेज बुखार हुआ कि 15 दिन बाद ही देहान्त हो गया। रूपकंवर का ध्यान तो प्रभु की ओर ही रहता था। उन्होंने कोई विलाप नहीं किया। मीरां की तरह उनका प्रेम प्रभु की तरफ ही रहा। इसी समय से इन्होंने एक समय भोजन करना शुरू कर दिया था। अब उनका सारा ध्यान भजन-कीर्तन में रहता, धीरे-धीरे उनकी साधना बढ़ती गई। सतीजी के जेठ जालिमसिंह के पुत्र मानसिंह को सती माता ने माँ की तरह से पाला-पोसा था। 15 फरवरी, 1943 को उनका भी निधन हो गया तब इनके सतीत्व का ज्वार उमड़ आया व इन्होंने पुत्रवत पाले हुए मानसिंह के साथ ही सती होकर इस संसार को छोड़ना चाहा लेकिन परिवार के लोगों ने शंकर नाम के सुनार से उन पर कम्बल डलवा दिया। वैज्ञानिक जगत माने या न माने पर आध्यात्मिक जगत में ऐसा माना जाता है कि सतीत्व का ज्वार चढ़ने पर किसी भी तरह नीले, काले रंग के छींटे दे दिए जाएँ या इसी तरह का वस्त्र आदि छुआ दिया जाये तो वह देह अपवित्र हो जाती है और सतीत्व का ज्वार उतर जाता है। सतीजी के साथ उस समय ऐसा ही हुआ। वे सती नहीं हो सकी। शंकर सुनार तो कुछ समय बाद चल बसा।

सती माँ उस समय हनुमानजी के मंदिर से घर लौट आई पर उसी दिन से अन्न व जल छोड़कर भगवान भरोसे पवनाहार पर ही निर्भर हो गई। तब से अपने शरीरान्त तक निरंतर 43 वर्ष सतीजी निराहार रहकर साधना रत रही। उन्होंने अपनी साधना के समय ही भारत के प्रसिद्ध तीर्थस्थलों का भ्रमण भी किया। उनके निराहार रहने से विज्ञान जगत भी चकित था। देश-विदेश के बहुत से डाक्टरों ने इस बात की जाँच भी की कि वे बिना आहार कैसे जीवित रह रही हैं। परन्तु विज्ञान-जगत से आध्यात्म जगत ऊँचा माना जाता है। अत: भला डाक्टरों की वहाँ तक पहुँच कैसे सम्भव हो सकती है। वे सांसारिक आकर्षण के केन्द्र धन की तरफ कभी आकर्षित नहीं हुई। पैसे को अपने हाथ से कभी छुआ तक नहीं। वर्ष 1981-82 में आई लूणी नदी की बाढ़ में सती माँ के मन्दिर को छोड़कर शिव मन्दिर व मकान भी बह गये थे जिसके प्रत्यक्षदर्शी श्री लूणसिंह राजपुरोहित निवासी कल्याणपुरा तहसील सरदारशहर, जिला चूरू आज भी जिन्दा हैं। तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री हरिदेव जोशी माँ के आश्रम में पधारे थे। उन्होंने सतीमाता की शक्ति को न पहचानते हुए उनसे कहा, ''डोकरी! तेरे मन्दिर के लिये दस हजार रुपये दे रहा हूँ बोल और क्या चाहिए?'' माँ ने कहा-''तेरे पास क्या है देने के लिये, मुझे तो लाखों हाथ वाला दे रहा है। तेरे तो अपने दो हाथ भी नहीं हैं।'' मुख्यमंत्री के चेहरे पर हवाईयाँ उड़ने लगी। सतीजी ने अपने जीवन में अनेकों चमत्कार दिखाये। प्यास, निन्द्रा, मल-मूत्रादि विसर्जन की नैसर्गिक वृतियों पर 43 वर्षो तक निरोध रखकर 15 नवम्बर, 1986 को इस असार संसार को छोड़कर पुण्यधाम को प्रस्थान किया। लूणी नदी के किनारे स्थित बालाधाम आज भी करोड़ों भक्तों का श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है।

✲

ईश्वर को जानने वाले का हृदय निर्मल कांच की हांडी में जलते हुए दीपक के समान है। उसका प्रकाश सर्वत्र फैलता है। – **अमृत कलश**

हरिद्वार के प्रमुख दर्शनीय स्थल

– स्वामी गोपाल आनन्द बाबा

गिरिराज हिमालय से उतरकर गंगाजी मायापुरी में धरती पर प्रवाहमान होती है, अत: इस स्थान को गंगाद्वार कहते हैं। चूंकि यहीं से हरि एवं हर (विष्णु एवं शिव) के दर्शन का पथ प्रशस्त होता है, अत: इस स्थान को हरिद्वार व हरद्वार भी कहते हैं। सरकार व प्रशासन ने प्राचीन समय से ही अपने मानचित्र व आंकड़ों में इस नगर का नाम-हरिद्वार लिख रखा है।

1. ब्रह्मकुण्ड (हर की पौड़ी) :– यह हरिद्वार का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थल है। गंगाजी में एक सीमा में ब्रह्मकुण्ड स्थित है। मालवा प्रमार सम्राट विक्रमादित्य ने इसी स्थान पर साधना व तपस्या करके अमर पद प्राप्त करने वाले अपने भाई योगी भर्तृहरि की स्मृति में यहाँ पर पैड़ियाँ यानी सीढियाँ निर्माण कराई थी, जिसके कारण यह स्थल 'हर की पैड़ी' (भर्तृहरि की पैड़ी) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यूं तो यहाँ कभी भी आकर स्नान-ध्यान-पूजन करना पुण्यदायी माना जाता है, परन्तु कुम्भ के महत्त्वपूर्ण पर्व के अवसर पर यहाँ स्नान करना अति पुण्यदायक माना जाता है।

2. गऊघाट :– ब्रह्मकुण्ड के दक्षिण में कुछ ही दूरी पर स्थित गऊघाट पर स्नान करने से मनुष्य गोहत्या के पाप से भी मुक्ति पा जाता है ऐसी मान्यता है। इसी स्थान पर गंगा नहर पर शताब्दी स्मारक सेतु निर्माण किया गया है।

3. कुशावर्त घाट :– मान्यता है कि यहाँ पर महर्षि दत्तात्रेय ने एक पैर पर खड़े होकर घोर तपस्या की थी। गंगाजी के प्रवाह में उनके कुश आदि बह गए। उनके कुपित होने पर गंगा ने उन्हें वापस किया। तब से इस स्थान का नाम कुशावर्तघाट पड़ गया। यहाँ पर स्नान व पिण्डदान का विशेष महत्त्व है। इस घाट का निर्माण इन्दौर (मालवा) की होल्कर महारानी अहिल्याबाई ने कराया था।

4. नीलधारा/चण्डी टापू/चण्डी घाट :– गंगाजी की ही एक प्रमुख धारा चण्डीदेवी पहाड़ी के नीचे ऋषिकेश रोड़ के निकट दो भागों में विभक्त होकर आगे गंगाजी में मिलती है। गंगाजी के इस प्रवाह को नीलधारा कहते हैं। नीलधारा के मध्य अवस्थित स्थान को चण्डीद्वीप या चण्डी टापू कहते हैं। इसके एक प्रमुख घाट को 'चण्डीघाट' कहा जाता है। नीलधारा के दोनों प्रवाहों को गंगाजी की प्राचीन धारा बताते हैं।

5. मनसा देवी मंदिर :– यह भगवान महादेव शिव की मानस पुत्री मनसा देवी का स्थान है। हरिद्वार में हिमालय के शिवालिक पर्वत शृंखला के एक शिखर पर मनसा देवी मंदिर स्थित है। गंगाजी को पार कर गंगा-मनसा बाजार (लम्बा व चौड़ा) है, जो धीरे-धीरे ऊँचाइयों में अवस्थित है, पश्चात् सीढ़ियाँ हैं, जिनकी संख्या 282 हैं, खड़ी चढ़ाई है। रोप-वे-उड़नखटोला भी है जो विद्युत से चलता है। ब्रह्माजी के मन से उत्पन्न तथा ऋषि जरत्कारू की पत्नी सर्पराज्ञी-सर्पों की देवी माँ मनसा की यहीं तीन मुख पाँच भुजाओं वाली अष्टनाग वाहिनी मूर्ति स्थापित है। नवचण्डी में मनसा देवी को दशम् शक्ति कहा जाता है। पैदल चढ़ने की भी अनुभूति व अनेक दृश्यों तथा पवित्र स्थानों का अवलोकन स्फूर्तिदायक है। उड़नखटोला से भी प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लिया जा सकता है। मन्दिर स्थल से हरिद्वार का विहंगम दृश्य भी दिखाई देता है। वहाँ पूजन सामग्री सहित जलपान-भोजन शुल्क देकर प्राप्त किया जा सकता है।

6. चण्डी देवी मंदिर :– मान्यता है कि जहाँ मनसा देवी हों, वहीं चण्डी देवी का होना अनिवार्य होता है। हरिद्वार के भी एक छोर पर मनसा देवी पर्वत पर विपराजमान हैं तो दूसरे छोर पर पर्वत पर चण्डी देवी विराजती हैं। यहाँ भी खड़ी सीढ़ियाँ चढ़कर पैदल पहुँचते हैं या फिर रोप-वे-उड़नखटोला (विद्युत द्वारा संचालित) द्वारा। शिवालिक पर्वत शृंखला का यह पर्वत शिखर मनसा देवी शिखर से भी थोड़ा ऊँचे स्थान पर है और फैला हुआ है। एक ओर चण्डी देवी हैं तो दूसरी ओर पवनपुत्र हनुमान की माता अंजना देवी विराजती हैं। पौराणिक कथाओं के अनुसार तंत्र-मंत्र की सिद्धिदात्री चण्डी देवी ने

इसी स्थान पर शुम्भ और निशुम्भ नामक असुरों का वधन किया था। नीचे और ऊपर पूजन सामग्री तथा विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थ शुल्क देकर प्राप्त होते हैं। बहुत अच्छी व्यवस्था है।

7. मायादेवी मंदिर :- यह हरिद्वार नगर के बीच स्थित है। मायादेवी हरिद्वार की अधिष्ठात्री देवी है। ज्ञात हो कि नगर का प्राचीन नाम भी मायापुरी है। ''अयोध्या मथुरा ***माया*** काशी कांची अवन्तिका पुरी द्वारावती चैव सप्तैत: मोक्ष दायिका।'' यह मन्दिर मायापुर का प्राचीनतम मंदिर है। नगर के मध्य स्थित मायादेवी सिद्ध देवी कही जाती है।

8. बिलकेश्वर महादेव मन्दिर :- शिव के प्रमुख स्थानों में एक बिलकेश्वर महादेव का मंदिर है। इस मंदिर के निकट स्थित बिल्व पर्वत की तलहटी में हिमालय की पुत्री शैलजा (उमा) ने भगवान शिव की प्राप्ति के लिये घोर तपस्या की थी। मान्यता है कि उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने उन्हें वहाँ दर्शन दिये थे।

9. गौरीशंकर मन्दिर :- हरिद्वार-नजीबाबाद मार्ग पर स्थित प्राचीन गौरीशंकर मन्दिर माता पार्वती के प्रेम का प्रतीक है। भगवान शंकर का यह प्रिय भ्रमण स्थल था। मान्यता है कि यहाँ पर पूजा-अर्चना करने से भक्तगणों की मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

10. सती कुण्ड :- कनखल-लक्सर मार्ग पर प्राचीन सती कुण्ड का अपना महत्त्व है। पुराणों के अनुसार इसी स्थान पर दक्ष प्रजापति ने एक विशाल यज्ञ कराया था जिसमें भगवान शिव का अपमान हुआ था। सती ने कुण्ड में कूदकर यज्ञाहुति दे दी, इसी कारण यह स्थान सती कुण्ड के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

11. दक्षेश्वर महादेव मन्दिर :- हरिद्वार के उपनगर कनखल में स्थित दक्षेश्वर महादेव मन्दिर (दक्ष मंदिर) को शास्त्रों में मुख्य तीर्थ स्थल माना जाता है। कनखल भगवान शिव की ससुराल कहलाती है जहाँ प्रजापति दक्ष की राजधानी थी। यहीं पर माता सती का जन्म हुआ था। मान्यता है कि इसी स्थान पर भगवान शिव की धर्मपत्नी सती के पिता दक्ष ने यज्ञ किया था। यज्ञ के समय भगवान शिव को आमंत्रित न करने पर माता सती ने अपमानित महसूस किया और इस यज्ञ कुण्ड में अपनी आहुति दे दी। यह देख क्रुद्ध होकर महादेव शिव के गण (अनुयायी) वीरभद्र व काली ने सब कुछ तहस-नहस कर डाला। वीरभद्र ने दक्ष का वध कर दिया। परन्तु बाद में महादेव शिव ने दक्ष के धड़ पर बकरे का मस्तक संयुज्य कर उन्हें पुनर्जीवित कर दिया। यहाँ पर लण्ढौरा की रानी दनकौर ने सन् 1810 ई. में दक्षेश्वर महादेव मन्दिर का पुनर्निर्माण कराया। बगल में माता सती का मंदिर है और दसमहाविद्याओं का भव्य मंदिर है तथा गंगाजी का घाट है। निकट का लक्ष्मीनारायण मंदिर भी दर्शनीय है।

12. सप्तऋषि आश्रम :- मान्यता है कि जब गंगा जी पृथ्वी पर अवतरित हुई तो हरिद्वार के निकट सप्तऋषियों के आश्रम को देखकर रुक गई और यह निर्णय नहीं कर पायी कि किस ऋषि के आश्रम के सामने से प्रवाहित हों तथा शेष ऋषियों के आश्रमों को छोड़ दें, क्योंकि प्रश्न सभी ऋषियों के सम्मान का था एवं उनके कोप भाजन बनने का भी भय था। असमंजस में रुकी हुई गंगा देवी को देवताओं ने सात धाराओं में विभक्त होकर बहने को कहा तो उन्होंने वैसा ही किया। इससे यह स्थान सप्त सरोवर व सप्तऋषि आश्रम के नाम से सुप्रसिद्ध हुआ।

13. वैष्णो देवी मन्दिर :- यह मंदिर सप्तसरोवर मार्ग पर है। इसका निर्माण सन् 1993 ई. में हुआ। मंदिर भव्य, आकर्षक व दर्शनीय है। माता ऊपर गुफा में विराजमान हैं। यहाँ सभी देवी-देवता विराजमान हैं।

14. भारत माता मन्दिर :- सप्तसरोवर मार्ग पर स्थित यह मंदिर आठ मंजिला है। प्रत्येक मंजिल में भगवान महादेव शिव, भगवान विष्णु, माता शक्ति देवी दुर्गा सहित भारतवर्ष के ऋषि-महर्षि, संत, महापुरुषों व स्वतंत्रता सेनानियों की प्रतिमाएँ आकर्षण का केन्द्र हैं। अन्य मंदिर हैं श्री राममंदिर, श्री त्रिकूट मंदिर आदि।

15. सुरेश्वरी देवी पीठ :- भारी हैवी इलेक्ट्रिकल्स कारखाने के निकट रानीपुर वन विभाग चेक नाका से उत्तरी दिशा में लगभग 2 कि.मी. वन की ओर सुरकूट पर्वत पर भगवती सुरेश्वरी का मंदिर स्थित है।

गतांक से आगे

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में राजपूतों का योगदान

- संकलन - भंवरसिंह मांडासी

बिहार के वीर राजपूतों ने 1857 की क्रान्ति में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। यहाँ क्रांति का नेतृत्व किया जगदीशपुर रियासत के राजा वीर कुंवरसिंह ने। रूसी विद्वान प्रोफेसर पैच्चेनकोने अपने ग्रन्थ 'नरोदन वस्तानिचे इन दी पीपुल्स रिवोल्ट इन इण्डिया' में लिखा है- ''भारत के सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का वास्तविक नायक वीर पुरुष कुंवरसिंह था। युद्ध सम्बन्धी कला कौशल, व्यूह रचना, दूरदर्शिता, गोरिल्ला युद्ध, जुझारूपन और अदम्य साहस का जो परिचय कुँवरसिंह ने दिया वह उन्हें नाना साहब, लक्ष्मीबाई और तांत्या टोपे जैसे इतिहास पुरुषों की प्रथम पंक्ति में ला खड़ा कर देता है।''

जगदीशपुर (बिहार) परमार राजपूतों का एक राज्य था। अलाऊद्दीन खिलजी द्वारा मालवा पर कब्जा करने के बाद शकशाह परमार बिहार चला गया था। उसने वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। सम्राट शाहजहाँ ने जगदीशपुर राज्य के स्वामी को राजा का खिताब दिया था। वीर कुँवरसिंह का जन्म वहाँ के राजा साहब जादासिंह की रानी के गर्भ से 1777 ई. में हुआ। जगदीशपुर राज्य डलहौजी की अपहरण नीति का शिकार हो रहा था। उस समय 1857 ई. में कुँवरसिंह की उम्र अस्सी वर्ष की थी और वे अपने क्षेत्र में काफी लोकप्रिय थे। 25 जुलाई, 1857 को दानापुर (बिहार) के भारतीय सैनिकों ने विद्रोह कर दिया और वे विद्रोही सैनिक जगदीशपुर पहुँचे। वीर कुँवरसिंह ने उसी समय पूर्वी क्षेत्र का कमाण्ड सम्भाला व सेना को संगठित किया।

हरकिशनसिंह पीरो परगना का तहसीलदार जो बड़ा लड़ाकू था, उसको सेना संचालन की जिम्मेदारी दी। हरकिशनसिंह के चार भाई लक्ष्मीसिंह, अजीतसिंह, आनन्दसिंह और राघसिंह ने भी इस क्रान्ति में भाग लिया। उन चारों को अंग्रेजों ने काले पानी की सजा दी थी। दानापुर छावनी के सिपाहियों को विद्रोही बनाने में भी हरकिशनसिंह की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। कुंवरसिंह द्वारा लड़ी गई महत्त्वपूर्ण लड़ाईयों में हरिकिशन की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। हरकिशनसिंह के अलावा जिन राजपूतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही उनके नाम इस प्रकार हैं :- निशानसिंह चौहान (सहसराम), सीघासिंह (गाजीपुर सेना का कमाण्डर), जोधासिंह (सीघासिंह का भाई), रामेश्वरसिंह (अंग्रेज सेना का बागी सुबेदार), सुन्दरसिंह (जनरल के पद पर), भजनसिंह (चावर-भोजपुर-अंग्रेजी का बागी सुबेदार), राणा दालानसिंह (क्रान्ति परामर्शदाता), जीवधनसिंह (खुमदनी गया का जमींदार) बिहिया कमान का कमाण्डर, लक्ष्मीसिंह भदवर (भोजपुर), कानसिंह, काशीसिंह (प्रधान सेनापति), रणबहादुरसिंह (गाजीपुर जमींदार), शिवबालक सिंह (क्रांति के जनरल), हरिसिंह हेमतपुर (भोजपुर का जमींदार), हजारासिंह (बलिया-भोजपुर का जमींदार), मनकूबसिंह (अंग्रेजी सेना का बागी सिपाही), जगमालसिंह (अंग्रेज सेना का बागी सिपाही), उदतिसिंह, द्वारकासिंह, शिवधरसरन, आनन्दसिंह (घुड़सवार सेना के जनरल), रामनारायणसिंह (अंग्रेज सेना का बागी सिपाही), राधेसिंह, भोलासिंह (गोला बारूद प्रभारी), महादेवसिंह, साहिब जादासिंह, रामसिंह (अंग्रेज सेना के बागी सुबेदार), तिलकसिंह (अंग्रेज सेना का बागी हवलदार), भारूसिंह (अंग्रेज सेना का बागी सुबेदार)।

कुँवरसिंह अपनी सेना के साथ आरा पहुँचा और आरा खजाने पर कब्जा कर लिया। 29 जुलाई को दातापुर से कप्तान उनवर के अधीन 300 गोरे सिपाही और 100 सिख आरा की सेना की मदद के लिये पहुँचे। कुंवरसिंह ने आमबाग की टहनियों में अपने आदमी छिपा दिये और ज्योंही उन की सेना आम बाग से निकली अंधेरे में ऊपर से कंवरसिंह के आदमियों ने गोलियाँ बरसाई जिससे अंग्रेज सेना के बहुत से सैनिक मारे गये। उनवर भी यहीं मर

गया। इसके बाद मेजर ऑयर बड़ी सेना लेकर तोपों के साथ मदद के लिये चला। 2 अगस्त को बीबीगंज के निकट दोनों में युद्ध हुआ। यहाँ ऑयर की विजय हुई। कुंवरसिंह को आरा से हटना पड़ा। ऑयर ने उनका पीछा किया। जगदीशपुर के महलों पर कब्जा कर लिया। बूढ़ा कुँवरसिंह जनाना सहित जगदीशपुर से बाहर निकल गया। क्रांतिकारियों को साथ लेकर कुंवरसिंह ने 1857-1858 में आजमगढ़ के पास अतरौलिया स्थान पर डेरा डाला। अंग्रेजों की एक सेना मिलमैन के नेतृत्व में 22 मार्च को कुँवरसिंह के मुकाबले में पहुँच गई। घमासान जंग के बाद कुंवरसिंह की सेना एकदम पीछे हटने लगी। अंग्रेजी सेना ने समझा कुँवरसिंह हार कर मैदान छोड़ रहा है। विजय की खुशी में मिलमैन ने सेना को भोजन करने की आज्ञा दी। कुँवरसिंह 80 वर्ष की आयु में भी फुर्तीला था। अंग्रेजी सेना जब भोजन करने बैठी, कुँवरसिंह अचानक अंग्रेजी सेना पर टूट पड़ा। कुँवरसिंह से थोड़ा मुकाबला करने के बाद अंग्रेज सेना भाग पड़ी और कुँवरसिंह की विजय हुई। एक दूसरी अंग्रेज सेना कर्नल डेम्स के नेतृत्व में मिलमैन की सहायता के लिये आई। इस सेना को भी कुंवरसिंह ने पराजित कर दिया। डेम्स भागकर आजमगढ़ के किले में छिप गया। कुंवरसिंह की विजय और उनके द्वारा बनारस पर चढ़ाई का समाचार सुनकर लार्ड कैनिंग भी घबरा गया।

कुंवरसिंह इस समय अपनी राजधानी जगदीशपुर से 100 मील से भी अधिक की दूरी पर था। लखनऊ से भागे क्रान्तिकारी भी कुँवरसिंह के साथ शामिल हो गए। लार्ड कैनिंग ने लार्डमार्क को सेना सहित कुँवरसिंह से युद्ध करने भेजा। 6 अप्रैल को लड़ाई हुई। उस दिन 81 साल की उम्र में बूढ़ा कुँवरसिंह अपने सफेद घोड़े पर सवार घमासान लड़ाई के अन्दर बिजली की तरह इधर से उधर लपकता हुआ दिखाई दे रहा था। लार्ड मार्क हार गया और भागा। कुँवरसिंह ने उसका पीछा किया। इतिहासकार मालसेन लिखता है कि बनारस आक्रमण को छोड़कर लार्ड मार्क का पीछा करना कुँवरसिंह की भूल थी। लार्ड मार्क आजमगढ़ के किले में घुस गया। कुँवरसिंह ने उसे किले में कैद कर लिया तब लार्ड लगर्ड बड़ी सेना लेकर आजमगढ़ की तरफ बढ़ा। कुँवरसिंह को पता लगने पर उन्होंने आजमगढ़ को छोड़कर गाजीपुर जाने एवं वहाँ से जगदीशपुर जाने की योजना बनाई। कुँवरसिंह ने एक सेना लगर्ड के मुकाबले के लिये भेजी और स्वयं गाजीपुर की तरफ बढ़ा। छोटी सेना लगर्ड से छुटपुट लड़ाई कर उसे रोकती रही। लगर्ड की सेना ने 12 मील तक कुँवरसिंह का पीछा किया पर वे हाथ न आए। इतने में थोड़ा चक्कर देकर कुँवरसिंह ने लगर्ड की सेना पर हमला किया, अंग्रेजी सेना हार गई। ***(क्रमश:)***

पृष्ठ 20 का शेष

विचार-सरिता

शुद्ध चित्त से किया गया आहार हमारे मन व शरीर को पवित्र व पुष्टित बनाता है।

4. भोजन सामग्री की शुद्धता :- भोजन सामग्री की शुद्धता व पवित्रता पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। भोज्य सामग्री जैसे आटा, दाल, सब्जी, घी, मसाला आदि स्वच्छ व साफ बर्तनों में ढककर रखना चाहिये। बिना ढके बर्तनों में चूहे, कोकरोच, मक्खियाँ आदि घुसकर मल-मूत्र से अनिष्ट कर देते हैं जिससे भोजन विषाक्त बन जाता है और कई प्रकार की बीमारियाँ होने की सम्भावना रहती है। अत: बाजार से लाई गई सब्जियाँ व फलों को गुनगुने स्वच्छ जल से अवश्य धो लेना चाहिये।

आहार हम केवल मुँह से ही नहीं लेते हैं। आहार हम हमारी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से भी लेते रहते हैं। अत: अच्छा देखें, पवित्र सुनें, पवित्र सूंघें, पवित्र चखें तथा पवित्र चखें तथा पवित्र स्पर्श करते हुए शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्धादि विषयों में निरासक्त भाव रखते हुए अपने अन्त:करण को मलिन होने से बचाएँ। तभी तो शुभ संकल्प और नेक आचार-विचार होंगे। आज भी जो शुद्ध, सात्विक आहार लेकर अपनी मलिन वासनाओं से अन्त:करण की रक्षा करते हैं वे ज्यादा सुखी व भगवत्ता के नजदीक हैं।

ओम् शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

भक्त शिरोमणि मीरा बाई

– आलेख एवं चित्रांकन ब्रजराजसिंह खरेड़ा

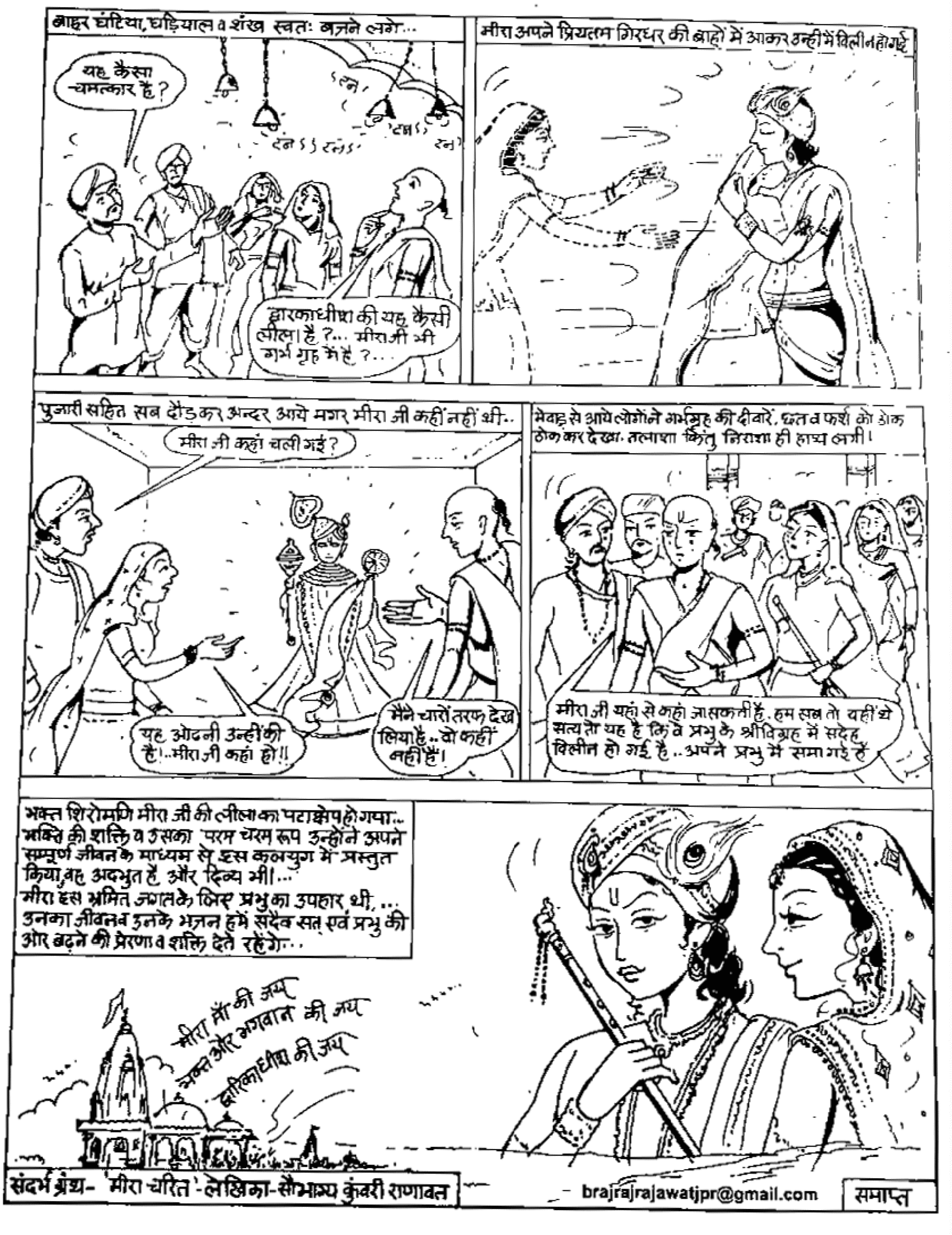
आखिर घंटियां, घड़ियाल व शंख स्वतः बजने लगे...
यह कैसा चमत्कार है?
टन्न
टन्न
टन्न टन्न
टन्न
द्वारकाधीश की यह कैसी लीला है?... मीरा जी भी गर्भ गृह में हैं?...
मीरा अपने प्रियतम गिरधर की बाहों में आकर उन्हीं में विलीन हो गई
पुजारी सहित सब दौड़ कर अन्दर आये मगर मीरा जी कहीं नहीं थी..
मीरा जी कहां चली गई?
यह ओढनी उन्हीं की है।..मीरा जी कहां हो!!
मैंने चारों तरफ देख लिया है.. वो कहीं नहीं हैं।
मेवाड़ से आये लोगों ने गर्भगृह की दीवारें, छत व फर्श को ठोक ठोक कर देखा, तलाशा किंतु निराशा ही हाथ लगी।
मीरा जी यहां से कहां जा सकती हैं, हम सब तो यहीं थे सत्य तो यह है कि वे प्रभु के श्रीविग्रह में सदेह विलीन हो गई हैं.. अपने प्रभु में समा गई हैं
भक्त शिरोमणि मीरा जी की लीला का पटाक्षेप हो गया... भक्ति की शक्ति व उसका परम चरम रूप उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन के माध्यम से इस कलयुग में प्रस्तुत किया, वह अदभुत है और दिव्य भी!... मीरा इस भ्रमित जगत के लिए प्रभु का उपहार थी, ... उनका जीवन व उनके भजन हमें सदैव सत् एवं प्रभु की ओर बढ़ने की प्रेरणा व शक्ति देते रहेंगे...
मीरा माँ की जय
भक्त और भगवान की जय
द्वारिकाधीश की जय
संदर्भ ग्रंथ- 'मीरा चरित'-लेखिका-सौभाग्य कुंवरी राणावत
brajrajrajawatjpr@gmail.com
समाप्त

अपनी बात

एक कहानी पढी। एक कवि रेल में यात्रा कर रहा था। उसी डिब्बे में एक युवक भी यात्रा कर रहा था, जिसकी आयु लगभग तीस वर्ष की रही होगी। रात को दोनों सो गए। सुबह हुई तो दोनों का एक दूसरे से परिचय हुआ। उस युवक ने कवि से कहा-क्षमा करें, आप जहाँ बैठे हैं, वहाँ मुझे बैठ जाने दें। कवि ने युवकसे पूछा कि यहाँ इस खिड़की के पास बैठने का क्या कारण है? इतनी खिड़कियाँ हैं, कहीं भी बैठा जा सकता है।

तब युवक ने कहा कि आप पूछते हैं तो बताता हूँ। आज से दस साल पहले मैंने एक जघन्य अपराध किया था। मुझे सजा हुई और जेल में डाल दिया गया। दस साल की सजा काटकर घर वापस लौट रहा हूँ। शंकित हूँ। दस साल में मेरे परिवार से कोई मुझे जेल में मिलने नहीं आया। आशा तो यही करता हूँ कि वे लोग सीधे-सादे हैं, ग्रामीण हैं, सैकड़ों मील की यात्रा उनके लिये करनी असंभव रही होगी। पर कौन जाने, शायद उन्होंने मुझे त्याग ही दिया हो। दस वर्षों में एक पत्र भी मेरे परिवार से नहीं आया। आशा तो यही करता हूँ कि वे लोग गैर पढे-लिखे हैं, इसलिए न लिख सके होंगे। लेकिन मन में यह भय भी है कि हो सकता है, उन्होंने जानकर ही न लिखा हो। किसी और से तो लिखवा ही सकते थे। वे लोग गरीब हैं, गैर पढे लिखे हैं, पर कुलीन हैं और बड़े स्वाभिमानी हैं। मेरे कारण जो उनकी प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचा है, शायद वे मुझे अंगीकार करने को राजी भी न हों।

तो मैंने उनको लिखा है कि इस रेलगाड़ी से मैं आ रहा हूँ। सुबह होते ही, सूरज के उगते ही, मेरे गाँव में यह रेल प्रवेश करेगी। गाँव के बाहर, स्टेशन के पूर्व ही हमारा खेत है। उसमें सेव का एक बड़ा वृक्ष है। वह रेल की पटरी के बिल्कुल करीब है। तो मैंने उनको लिखा है, उस पेड़ पर एक सफेद झंडी लगा देना, ताकि मुझे पता चल जाए कि मेरा लौट आना आपको स्वीकार है और मैं घर लौट सकता हूँ। अगर सफेद झंडी लगी मिली तो मैं गाँव की स्टेशन पर उतर जाऊँगा और घर आ जाऊँगा। अगर न लगी मिली तो रेल में ही सवार रहूँगा। कहीं भी फिर उतर जाऊँगा और संसार में खो जाऊँगा। फिर मेरा नाम दुबारा न सुन सकोगे।

इसलिए इस जगह बैठ जाने दें। इस खिड़की से वह वृक्ष ठीक से दिखाई पड़ेगा। कवि भी उसकी बात व भावना देखकर अभिभूत हो गया और उसे वह जगह दे दी। लेकिन जैसे-जैसे गाँव करीब आने को होने लगा, युवक बेचैन हो गया। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। उसने कवि से फिर प्रार्थना की कि आप कृपा करके वापस यहाँ बैठ जाएँ, क्योंकि मेरी आँखों में इतने आँसू बह रहे हैं कि मैं देख भी नहीं पा रहा हूँ। कृपया आप मेरे लिये देख दें। कहीं ऐसा न हो कि झंडी हो और मुझे दिखाई न पड़े। या ऐसा भी हो सकता है कि झंडी न हो और मेरी कल्पना के कारण मुझे झंडी भ्रमवश दिखाई पड़े, मैं इतना भावाविष्ट हूँ। आप वापस इसी जगह पर आ जाएँ और मुझे बता दें।

कवि भी भावाविष्ट हो गया। वह बैठ गया है। वह टकटकी लगाकर बाहर देख रहा है। जैसे ही वृक्ष दिखाई पड़ा, उसकी आँख से भी आँसुओं की धारा बहने लगी। उस युवक ने उसे हिलाया और कहा क्या झंडी नहीं है? उसने कहा-नहीं, मैं इसलिए नहीं रो रहा हूँ। मैं इसलिए रो रहा हूँ कि पूरे वृक्ष पर झंडियाँ ही झंडियाँ हैं। पत्ते तो दिखाई ही नहीं पड़ते। हजारों झंडियाँ बांध दी हैं उन्होंने।

कहीं एक झंडी दिखाई न दे, इसलिए हजारों झंडियाँ बांधकर घर वाले प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसी तरह परमात्मा भी हमारी प्रतीक्षा कर रहा है। हजारों महापुरुष भेजकर इशारे कर रहा है, बुला रहा है, अपनी ओर। बाधाएँ तो हम ही पैदा कर रहे हैं। हम उसी से पैदा हुए हैं। हम

कितने ही संसार में भटक जाएँ, हमने कितने ही जघन्य कृत्य किए हों, इससे फर्क नहीं पड़ता। वह कभी हमसे मिलने भी न आया हो, इससे भी फर्क नहीं पड़ता। कोई चिट्ठी-पाती (समाचार) भी उसने न लिखी हो, इससे भी क्या फर्क पड़ता है। उसके हृदय के द्वार बंद होते ही नहीं। हम जिससे पैदा हुए हैं, उसके द्वार हमारे लिये कभी बन्द नहीं हैं। उसकी प्रतीक्षा अथक है। हमें मार्ग बता सके इसलिए अनेक सद्गुरु संसार में भेजता रहता है।

भूख है तो भोजन है। प्यास है तो पानी है। अभीप्सा है तो सद्गुरु भी होगा। थोड़ा खोजना पड़ता है। जितनी बहुमूल्य चीज खोजनी हो, उतना ही श्रम उठाना पड़ता है, उतना ही समय लगता है, उतनी ही अड़चनें होती हैं। हम खोजें, प्रयास करें, अपनी आँखों से न देख सकें तो सद्गुरु की आँखों से देख लें। हमारी आँख में आँसू, भाव, भय या संभावना हो सकती है। सद्गुरु की आँख साफ है। उसमें न आँसू हैं, न पीड़ा है, न उत्तेजना है न वह विह्वल है। उसकी आँख साफ व निर्दोष है। श्री क्षत्रिय युवक संघ के रूप में हमें सद्गुरु मिला है। उसकी पूरी चेष्टा है कि हमारे अन्तर का गुरु हमें उपलब्ध हो जाए। बस हमें इसी मार्ग पर निरंतर श्रमशील होना है।

पृष्ठ 18 का शेष

श्रीकृष्ण की संहार लीला

अधिकार नहीं। फल का अधिकार क्षात्रधर्म का है। उसी के निमित्त खेलते हैं, मनोरंजन के लिये नहीं। हमारा तो अधिकार नियमानुसार खेलने मात्र पर है। जीत-हार से न तो हर्ष होता है, न दुख। इस भाव का अभ्यास हमें निष्काम कर्मयोग में प्रवृत करता है। अहंकार आदि दुर्गुणों से मुक्ति पाने के लिये भी भिन्न-भिन्न प्रकार के खेल खिलाए जाते हैं। निरन्तर अभ्यास के कारण सद्संस्कार निर्माण की राह खुलती है। इधर-उधर भटकने की भी आवश्यकता नहीं, क्योंकि -

लक्ष्य है ऊँचा एक हमारा, एक ही मार्ग का लिया सहारा

गीता में भगवान ने अठारहवें अध्याय में कहा है-

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

अर्थात्- संपूर्ण धर्मों अर्थात् संपूर्ण कर्तव्य कर्मो को मुझ में त्याग कर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान परमेश्वर की शरण में आ जा। मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर। संघ भी ऐसी ही प्रार्थना करता है-

सूत्र तेरा नृत्य मेरा यंत्री तू मैं यंत्र तेरा।

हमारे कर्तव्य कर्म निष्काम भाव से करते हुए जीवन का सूत्र उसी परमात्मा को सौंपना है।

हम किसी की पूजा-अर्चना करना चाहते हैं तो उस आराध्य देव का कोई न कोई प्रतीक हमारे सामने रखते हैं। उसी में हमारा मन लगता है और जो विधि विधान करते हैं वे उसी के निमित्त करते हैं। संघ भी उस परमेश्वर के प्रतीक के रूप में परम पूज्य केशरिया ध्वज को मानता है, क्योंकि वह हमारे गौरवमय इतिहास और संस्कृति का साक्षी है। हमारे पूर्वजों ने जो-जो शौर्य और जौहर दिखाए वे इसी की छत्र छाया में रहकर दिखाए। इसीलिए हम गाते हैं,-

कुछ देखा कुछ सुना सहा सब तेरी ही तो इच्छा पर।
महा हवन पर हविष्य बनकर आये तेरी इच्छा पर।।
इन प्राणों पर इन भावों पर तव इच्छा अधिकार करे।
अरे तुम्हारे ही इंगित पर सुख दुख के सब साज पड़े।।

हमको मिला देख गर्व से धर्म पताका फहरी,
रोम रोम में इसकी आज्ञा अपना धर्म निभावें।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा बताए गये अभ्यास और वैराग्य के मार्ग पर चलकर हम भी हमारे भीतरी अवगुणों का संहार करने में जुटें, इसी में जीवन की सार्थकता है।

❊

- : शिविर सूचना :-

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं-

क्र.सं.	शिविर	समय	मार्ग आदि
1.	प्रा.प्र.शि.	03.06.2018 से 06.06.2018	***कुणी*** (प्रतापगढ़) सम्पर्क सूत्र : 9928051478
2.	प्रा.प्र.शि.	07.06.2018 से 10.06.2018	आंतरी माताजी ***आंतरी,*** जिला-नीमच (म.प्र.) सम्पर्क सूत्र : 7357179555
3.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	07.06.2018 से 10.06.2018 तक	महाराणा प्रताप हॉस्टल, ***गढी परतापुर,*** बांसवाड़ा। बांसवाड़ा से डूंगरपुर जाने वाली बसें गढी परतापुर होकर जाती है। सम्पर्क सूत्र : 9783624223, 9983565520, 9587968610
4.	प्रा.प्र.शि.	07.06.2018 से 10.06.2018	***ईड़वा*** तह. डेगाना (नागौर) सम्पर्क सूत्र : ठा. स. शिवप्रतापसिंहजी-9413171631 डेगाना रेल्वे स्टेशन से निजी बसें उपलब्ध हैं।
5.	प्रा.प्र.शि.	11.06.2018 से 14.06.2018	● ***बस्सी*** (चित्तौड़गढ़) सम्पर्क सूत्र : 7357179555
6.	प्रा.प्र.शि.	14.06.2018 से 17.06.2018	भांवता, धूणी आम्बा चौराहा, श्री दूधारी बाबा का मंदिर। गवर्न्मेन्ट कॉलेज के सामने से बस मिलती है। सम्पर्क सूत्र : श्री देवेन्द्रसिंह भांवता-9414949646 श्री लक्ष्मणसिंह राजपुरोहित-9413817634 श्री हेमन्तसिंह भांवता-9828940143
7.	प्रा.प्र.शि.	15.06.2018 से 18.06.2018	● ***हल्दीघाटी*** (राजसमंद) सम्पर्क सूत्र : 9829081971

✲ गणवेश व आवश्यक साहित्य लेकर आवें।

राजेन्द्रसिंह बोबासर

शिविर कार्यालय प्रमुख (श्री क्षत्रिय युवक संघ)

पृष्ठ 6 का शेष **चलता रहे मेरा संघ**

ध्यान रहे कि अन्तर का कपाट बहुत दृढ है, इसलिए बचने की नहीं लगे रहने की आवश्यकता है। उस कपाट को खोलने के जो भी उपाय उपलब्ध हों, उन्हें उपयोग में लेना तुरन्त प्रारम्भ कर दें। छोटे-छोटे काम करने से बड़े काम होने की पूरी संभावना है। छोटे-छोटे उपाय करते रहें तो चाबी लग जाएगी। बाहर की दुनिया प्यारी लगती है, बाहर की उपलब्धियाँ अच्छी लगती हैं पर यह मात्र भटकाव ही है। अन्तर यात्रा ही निश्चित स्थान पर पहुँचाएगी जो छोटी-छोटी बातों के, निर्देशों के पालन से प्रारम्भ हो सकती है। जो बचकर हम कर रहे हैं, क्या उससे परम सुख मिल सकता है? यह तो संसार में उलझना ही होगा, इससे परमसुख नहीं मिल सकता। इसलिए आत्मचिंतन निरंतर चलता रहना चाहिए ताकि भटकाव से बचकर हम अपना दायित्व निभाते हुए वांछित क्रांति की ओर बढ सकें।

हुकुम सिंह कुम्पावत (आकडावास, पाली)

शिव ज्वैलर्स

विश्वसनीयता में एक मात्र नाम

22/22 कैरेट हॉलमार्क आभूषण,
न्यूनतम बनवाई दर पर

शुद्ध राजपूती आभूषण (बाजूबन्द, पूछी, बंगडी, नथ आदि)
तैयार उपलब्ध एवं ऑर्डर से भी तैयार किये जाते है।

विशेषज्ञ :- सोने व चाँदी की पायजेब, अंगूठी, डायमण्ड, कुन्दन के आभूषण, बैंकॉक आईटम्स आदि

जी-1, सफायर कॉम्पलेक्स, जैन मेडिकल के सामने, खातीपुरा रोड़, झोटवाड़ा, जयपुर
मो. 7073186603, 8890942548 ब्रांच :- बैंगलोर व मुम्बई

G.K. सम्राट भैरुसिंह चारण व मैथ गुरु जयश शेखावत द्वारा संचालित

विक्रान्त

डिफेंस एकेडमी एण्ड क्लासेज

कोचिंग ऑफिस - कृषि मण्डी उत्तरी गेट, चुंगी नाका
डिफेंस ऑफिस - वृंदावन गार्डन के पीछे, बुड़सू रोड़
कुचामन सिटी

आर्मी रैली भर्ती का गारन्टेड व नॉन गारन्टेड बैच प्रारम्भ
पिछली सेना भर्ती व नेवी में औसतन सर्वाधिक सलेक्शन का रिकार्ड

मात्र 8 माह में कुल सलेक्शन = 41

कुचामन की सर्वश्रेष्ठ स्थायी फैकल्टी

12वीं साईंस मैथ में 85% से अधिक व NCC, नेशनल गेम्स सर्टिफिकेट वाले विद्यार्थियों को फीस में विशेष छूट

अगर आप 12 वीं के बाद सरकारी नौकरी के इच्छुक हो तो Join करें विक्रांत

NAVY	AIRFORCE	ARMY
POLICE	RAILWAY	SSC

भैरूसिंह चारण (G.K. सम्राट)
9001401388

जयश शेखावत (मैथ गुरू)
9001401388

VIRENDRA SINGH TALAWDA
Contractor
(M) 94143-96530

है एक साध्य हमारा,
एक ध्वजा है भैया,
एक ही रंग रंगे हैं,
एक ही है खेवैया,
मन एक हों, हम एक हों,
हम सबके सपने एक हों।

Sharwansingh Jaitawat
9326805192
020-65107720, 65107740
27660466

Shree Mahavir Plywood & Hardware

Plywood
Frame
Flush Door
Moulding
Lipping
All Types of woods
Carving
Laminate
All Brass Fitting

Sharwansingh S/o. Dungarsingh Jaitawat
V.P.O. Dhunda Lambodi, Tal.-Sojat, Distt.-Pali

Shop Add. :- Chikhali Road, M.I.D.C., 'G' Block, PL. No. PAP-24
Kasturi Market, Sambhaji Nagar, Chinchwad, Pune-19

Gulab Singh Mahecha
Vikram Singh Mahecha
Jitendra Singh Mahecha

MALLINATH
The Future of Life Style

Uday Singh Mahecha
Jagdish Singh Mahecha

EXPORT QUALITY

MALLINATH FAB TEX

NIGHTY CLOTH & DRESS MATERIALS
Behind Maruti Mills, Jerla Road, **BALOTRA** - 344022 (Raj.)
Mob. + 91 - 9680317002, + 91 - 8875190472, + 91 - 9414244673
visit us :- www.mallinathfabtax.com.in email :- mallinathudhyog2011@gmail.com

SISTER CONCERN

MGL PRINTS
F-390, 3911 4th Phase, Ind. Area,
BALOTRA - 344022 (Raj.)

Mallinath
TEX PRINTS

जून, सन् 2018
वर्ष : 55, अंक : 06

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2017-19

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्..

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह